भावय रे!

16 भावनाओं पर भावपूर्ण प्रस्तुति

प्रकाशक :

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

ISBN No. : 978-93-86952-40-0

भावय रे!

16 भावनाओं पर भावपूर्ण प्रस्तुति

प्रथम संस्करण : मार्च 2019
प्रतियाँ : 5000

मूल्य : 100/-

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड
गंगाशहर, बीकानेर - 334401 (राज.)
दूरभाष : 0151-2270261, 3292177

मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर (राज.)
मो. 93149-62474, 93149-62475

चिन्तक राम

प्रेरक राम

सर्जक राम

तारक राम

लेखक राम

बोधक राम

शोधक राम

अन्दर राम

बाहर राम

युग निर्माता

आचार्य श्री **रामलालजी** महाराज साहब

एवं

उपाध्याय श्री **राजेश मुनि** जी महाराज साहब

के पावन पुनीत पाद पङ्कजों में

सादर समर्पित

– समर्पणकर्ता

रामचरणानुगामी

प्रकाशकीय

भावना मन की प्रतिक्रिया है। सामान्य भाषा या आम भाषा में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि मन द्वारा किसी जीव या पदार्थ के प्रति जो महसूस किया जाता है और उसके प्रति जो क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है, वह भावना है। भावनाएं किसी भी इनसान की जिंदगी का अहम् हिस्सा हैं।

भावनाएं कितनी महत्त्वपूर्ण हैं इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सभी क्षेत्रों ने अपने-अपने तरीके से इसकी महत्ता पर बल दिया है। विज्ञान, चिकित्सा, धर्म, दर्शन सहित सभी क्षेत्र जीवन में भावना की उपयोगिता पर बल देते हैं।

धर्म में भी विभिन्न धर्मों ने भावना की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करने का प्रयास किया है किंतु जितनी सटीक व्याख्या जैन धर्म में की गई है उतनी और कहीं नहीं। यहां जीवन की प्रत्येक क्रिया में भावना को ही मूल बताते हुए सोलह प्रकार की भावनाएं कही गई हैं। इन भावनाओं के चिंतन से यथार्थ सत्यानुभूति और शाश्वत सुखानुभूति होती है। इतना ही नहीं इन भावनाओं पर चिंतन करके कोई भी मनुष्य अपने जन्म और मरण को सार्थक कर सकता है।

साधुमार्गी पब्लिकेशन द्वारा इन्हीं भावनाओं पर प्रकाशित पुस्तक **'भावय रे!'** आपके हाथ में है। वर्तमान परिवेश के उदाहरणों से भरी यह पुस्तक जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराती है। इन सच्चाइयों से मुंह मोड़ कर बैठे लोग इसे पढ़ेंगे तो सच्चाइयों से परिचित होकर अपने जीवन को सार्थक बनाएंगे।

पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का पूरा प्रयास किया गया है, फिर भी प्रकाशन में किसी प्रकार की त्रुटि हो गई हो तो हम क्षमा प्रार्थी हैं। हम चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे हम भविष्य में उनसे बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक **'भावय रे!'** के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

समता युवा संघ, दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

इसको पीना होगा... इसे जीना होगा... 8
शांत सुधारस 11
अनित्य भावना 13
अशरण भावना 21
संसार भावना 31
एकत्व भावना 41
अन्यत्व भावना 49
अशुचि भावना 57
आस्रव भावना 67
संवर भावना 77
निर्जरा भावना 89
लोक भावना 109
बोधि दुर्लभ भावना 129
धर्म भावना 147
मैत्री भावना 159
प्रमोद भावना 169
कारुण्य भावना 181
माध्यस्थ भावना 191
भावय रे 201

स्फुरति चेतसि भावनया विना, न विदुषामपि शान्तसुधारसः।
न च सुखं कृशमप्यमुना विना, जगति मोहविषादविषाऽऽकुले।।

भावना के बिना विद्वानों के भी चित्त में शान्तसुधारस स्फुरित नहीं हो पाता। उसके अभाव में मोह और विषाद के विष से आकुल जगत् में स्वल्पमात्र भी सुख प्राप्त नहीं होता।

-शान्तसुधारस

इसको पीना होगा...
इसे जीना होगा...

वर्तमान समय को यदि एक वाक्य में परिभाषित करें तो कहना ठीक होगा कि यह दौर मानसिक दरिद्रता का दौर है। भावों का दारिद्र्य इस युग में बढ़ता चला जा रहा है। हो सकता है कि एक बारगी आप इस बात पर विश्वास न करें। न विश्वास हो तो इन पंक्तियों को पढ़ते-पढ़ते अपनी नजर आज के समाज पर डालिए। आपको असलियत दिख जायेगी। आपको दिख जायेगा कि कैसे सुविधा और शिक्षा की अंधी दौड़ में भाग रहा आज का युवा भावों की समृद्धि में लगातार पिछड़ता जा रहा है। भावों की दरिद्रता उच्च शिक्षा संस्थानों की तरफ देखते हुए मुंह फाड़कर हंसती दिखाई देती है। विश्वविद्यालयी डिग्री पर अट्टहास करती दिखाई देगी। बड़े-बड़े पैकेज की तलाश में घूम रहे आज के पदवीधर (डिग्री होल्डर) प्रेम, सरलता, सेवाभावना और वात्सल्य के क्षेत्र में कहीं टिकते ही नहीं।

ऐसे में वर्तमान शिक्षा प्रणाली कटघरे में खड़ी हो जाती है। कटघरे में खड़ी हो क्यों नहीं ? क्या हमें सोचना नहीं होगा कि जो शिक्षा वर्तमान मानस को दरिद्र बनाती जा रही है क्या वह काफी है? क्या यह शिक्षा हमें संतुष्टि देने वाली है? जब इस पर चिंतन-मनन करेंगे तो जवाब मिलेगा- नहीं, यह शिक्षा काफी नहीं है। यह शिक्षा संतुष्टि देने वाली नहीं है। पर चिंतन-मनन करे कौन? जब सबकी नजर सम्पत्ति पर लगी हुई है।

सम्पत्ति के इंडेक्स में आज का मानव कदाचित आगे बढ़ रहा होगा परन्तु भावना के क्षेत्र में वह पिछड़ता ही चला जा रहा है। परिणामस्वरूप ईर्ष्या, क्रोध, छल-कपट, संकीर्णता के चलते मनुष्य का मस्तिष्क तनावग्रस्त होता चला जा रहा है। ऐसा नहीं है कि उसे दूर करने का प्रयास नहीं किया

जा रहा है। प्रयास तो हो रहे हैं किंतु वे यथोचित परिणाम नहीं दे पा रहे हैं।

हमारा परम सौभाग्य है कि तीर्थंकर भगवान के शासन में होने के फलस्वरूप हमें भावों की विशुद्धि का अवसर प्राप्त हुआ। प्रभु की परम कृपा से हमें अनुप्रेक्षा के रूप में द्वादश भावनाओं का बोध प्राप्त हुआ। श्री ठाणं सूत्र में इसका वर्णन धर्म-ध्यान के भेदों के रूप में परमात्मा ने अपनी देशना में किया है। इसके अनंतर मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ चार भावनाओं का वर्णन आचार्य अमित गति जी ने परमात्म बत्तीसी में किया है। इस प्रकार कुल सोलह भावनाएं हमारे ध्यान में आती हैं। इन सभी भावनाओं को मिलाकर आचार्य विनय विजय जी ने अपने ग्रंथ शांत सुधा रस की रचना की।

उसी को आधार बनाकर प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के समक्ष है। इसे पढ़कर हम स्वयं को भाव समद्ध बनाएं। प्रमोद भावना में रहकर हम ईर्ष्या वृत्ति पर विजय प्राप्त करें। कारुण्य भावना से भावित हो हम हिंसा वृत्ति को जीतें। मैत्री भावना की विशालता हमें खामेमि सव्वे जीव को चरितार्थ करने में सहयोगी बनेगी। अनित्य आदि भावना से हम जगत के नश्वर स्वरूप को जानें। जीव के एकीकरण का बोध करें। शरीर की अशुचिमयता का ज्ञान करें। ये सारे उपाय हमें भाव समृद्ध बनायेंगे।

आधुनिक समय भी अजीब दौर से गुजर रहा है। एक ओर विश्व मैत्री की बातें चल रही हैं, तो दूसरी ओर आतंकवाद सुरसा के मुंह की भांति बढ़ता ही जा रहा है। एक ओर व्यक्ति सामाजिक होने की कोशिश कर रहा है तो दूसरी ओर भाई-भाई आपस में ईर्ष्या से भरे हैं। धर्म, सम्प्रदाय सभी में आपसी सौहादर्य एवं प्रमोद भाव कम होता जा रहा है।

अब एक सवाल उठता है। सवाल उठता है कि क्या यह दौर ऐसे ही चलता रहेगा? इस सवाल का बहुत ही सीधा, सरल और छोटा सा जवाब है - नहीं। कदापि नहीं। क्यों नहीं? इसलिए नहीं, कि भगवान की वाणी हमारे लिए शरणभूत है। त्राण रूप है। इस वाणी रूपी जहाज का आसेवन करने से हम दुर्भावना रूपी समुद्र में डूबने से बच जायेंगे। प्रस्तुत पुस्तक में इस बात का प्रयास किया गया है कि मनुष्य का मन निर्मल, शुद्ध एवं दर्पण की भांति हो जाए, जीवन का आनंद लेने में समर्थ बन जाये।

इस समुद्र में डूबने से बचना है, मन को निर्मल एवं शुद्ध बनाना है,

जीवन का आनंद लेना है तो यह पुस्तक सिर्फ पढ़ना नहीं है।

इसको पीना होगा ...
इसको चबाना होगा ...
इसको पहनना होगा ...
इसको ओढ़ना होगा ...
इसको बिछाना होगा ...
कुल मिलाकर इसको जीना होगा ...
धारण करना होगा ...
इसकी सहायता से स्वयं को देखना होगा ...

इस पुस्तक में लोप चिन्ह (...) का प्रयोग कई बार किया गया है। पाठक वहां से सरसरी तौर पर आगे न बढ़ें। वहां रुकें और चिंतन करें... मंथन करें... अपने भीतर टटोलने का प्रयत्न करें कि मैं स्वयं कहां हूं? मैं कहां खड़ा हूं? पाठक, खासकर युवा पाठक यह सब ध्यान में रखकर इस पुस्तक का वाचन करे, ताकि आँसुओं से भीगी आँखों को हँसी की चमक मिल सके। अवसाद ग्रस्त मानस को समाधि मिल सके। व्याकुल चित्त को विश्राम मिल सके। इस अनादि, अनंत संसार यात्रा में यह पुस्तक शायद आपके काम आ सके।

■■■

शांत सुधारस

जगत् के सम्यक् रूप का जब बोध हो जाए तो जीवन ने धर्म समझा है या सुना है, ऐसा मानना चाहिए। केवल नित्य श्रवण, अध्ययन एवं लेखन चलता रहे और आत्मा के प्रदेशों तक वह तथ्य नहीं पहुँचे, प्राणों में नहीं घुले, रोम-रोम में नहीं रमे, सांसों में एकतार नहीं हो जाए तावत् वह श्रवण चित्त को परिवर्तित नहीं कर पाएगा और तब तक वह जीवन में दृष्टिगत नहीं हो पाएगा। इसीलिए भगवान ने इन्हें भावना के रूप में फरमाया है। अनुप्रेक्षा इनका अपर नाम है। जैसे आयुर्वेद में द्रव्य के साथ भावना दी जाती है जो बसरा मोती को मोती पिष्टी बना देती है। मोती में गुलाब जल की भावना दी जाती है। भावना देने से मोती के गुणों में बहुगुणित वृद्धि हो जाती है। ऐसा आयुर्वेद का मत है।

ठीक उसी प्रकार साधना रूपी मोती पिष्टी बनाने हेतु साधक को महती भावनाओं की अनुप्रेक्षा करनी चाहिए। उन भावनाओं से ही उस आत्मा का ऊर्ध्वारोहण संभव है। वह आत्मस्थ स्थितप्रज्ञ तथा अप्रमत्त की श्रेणी में आ सकता है। संसार में अभिरमण करते जीव के लिए भावनाएँ पाथेय हैं। वे मार्ग देती हैं, उसे बढ़ाती हैं, स्थिर करती हैं और उत्तरोत्तर हल्कापन प्रदान करती हैं। इसी से आत्मा के लिए भावनाओं का माहात्म्य है।

आचारांग, स्थानांग, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन प्रभृति आगमों से लेकर तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, द्वादशानुप्रेक्षा तथा शांतसुधारस आदि ग्रंथों द्वारा भव्य प्राणियों को भावना से भावित करते हुए कर्मनिर्जरा एवं आत्मोत्थान की प्रेरणा प्रदान की गई है। अनुयोग द्वार सूत्र में भाव आवश्यक के संदर्भ में साधक का अनुप्रेक्षा सहित प्रतिक्रमण ही उस श्रेणी में लिया गया अन्यथा कितना भी शुद्धोच्चारण पूर्वक किया गया प्रतिक्रमण भावश्यक की परिगणना में गणित नहीं होगा।

■■■

अनित्य भावना

असकृदुन्मिष्य निमिषन्ति सिन्धू-
र्मिवच्चेतनाऽचेतना: सर्वभावा:।
इन्द्रजालोपमा: स्वजनधनसङ्गमा-
स्तेषु रज्यन्ति मूढ़स्वभावा:।।

जड़ और चेतन सभी पदार्थ समुद्र की लहरों की भांति बार-बार उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं। स्वजन और धन का संयोग इन्द्रजाल जैसा है। मूढ़प्रकृति वाले लोग उनमें अनुरक्त हो जाते हैं।

-शान्तसुधारस

एक व्यक्ति से भेंट हुई। उसे देखते ही मन अतीत में गमन करने लगा कि अरे! ये क्या हो गया। शायद पांच साल पहले वाले व्यक्ति और आज के व्यक्ति में कोई साम्य प्रतीत नहीं हो रहा है। मन पीछे जाने लगा- गेहुंआ वर्ण, मध्यम कद-काठी, भरावदार शरीर, तेजस्वी मुख कमल, उत्साही व्यक्तित्व, विहार-गोचरी सेवा में बढ़-चढ़कर भाग लेने वाला वह शख्स दर्शनीय, मनोहर और अभिरूप था।

परिदृश्य बदला... पर्दा गिरा...

काल बीतने पर वही व्यक्ति आज शक्तिहीन, निस्तेज हो गया। इतना बदलाव देखकर मन भौचक्का रह गया। ये है शरीर का हाल और ये है अनित्यता का प्रभाव। एक साध्वी भगवती अपने सुभग परिकरों के साथ सुदूर प्रान्त की यात्रा करके पुन: गुरु चरणों में लौटी। उस समय वह देखते ही बनती थी। विनय, वाणी वैभव, ज्ञान वैभव, माधुर्य युक्त वह साध्वी जब प्रवचन सभा में उठीं तो कुछ ही क्षणों में सभा को बांध लिया। अपने वाक् कौशल से जनमानस को सम्मोहित कर लिया। लोग मंत्र-मुग्ध हुए अनथके सुन रहे थे। सभी वाह-वाह की भाव-भंगिमा प्रस्तुत कर रहे थे। वह साध्वी जब गाने लगीं तब आनन्द शत गुणित हो गया। सारे नगर में, साधु समुदाय में, श्रावक समाज में उनकी प्रवचन पटुता चर्चा का विषय बन गई थी।

पर्दा पुन: गिरा...

बदलाव की लहरें उठीं। परिवर्तन का चक्र चला तो कुछ सालों बाद उन साध्वी भगवती को पुन: देखने का अवसर

मिला। रुग्ण शय्या... औषधियों का ढेर... रिपोर्ट्स का अंबार... डॉक्टर्स का तांता... शरीर झुका, रीढ़ पर पट्टा बंधा हुआ, आँखें अन्दर धंसी हुई, आवाज में करुण आलाप, लकड़ी के सहारे व साध्वियों के हाथ को थामे वे एक-एक कदम आगे बढ़ा रही थीं। कहाँ वह प्रभाव, कहाँ ये बदलाव! कहाँ वह धैर्य, कहाँ ये अधीरता! कहाँ वह उत्साह और अब उनकी सहवर्ती साध्वियाँ कहने लगीं कि ये आत्मविश्वास को गिरा देती हैं। इतना परिवर्तन, इतनी जल्दी, इतने अल्प समय में कि अब वे आचार्य भगवन् के सम्मुख बिना सहारे खड़ी भी नहीं हो पा रही हैं। कहाँ घण्टों खड़े-खड़े धाराप्रवाह प्रवचन प्रदायिका महासाध्वी और कहाँ ये परम कारुणिक अवस्था को प्राप्त महामनस्विनी। शरीर अनित्य... स्वास्थ्य अनित्य... रूप अनित्य...

सदी के महानायक कहलाने वाले बिग बी को देखें। 30 साल पहले का सौंदर्य, रूप और आज का रूप। महान् डब्ल्यूडब्ल्यूएफ चैम्पियन अण्डरटेकर ने अपने कुश्ती के कैरियर का समापन हार से किया। फॉर्मूला वन रेस का चैम्पियन माइकल सूमाकर अभी कोमा में है। पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारीजी के निधन से पूर्व उनकी स्मृति खो गई थी। शीला दीक्षितजी को दिल्ली के मुख्यमंत्री पद से हटाया तो उनकी नेम प्लेट निकाल कर फेंक दी गई। केजरीवाल का नाम जितनी ऊँचाइयों पर अखबारों ने उछाला उतना ही ज्यादा गिराया भी। हमारे अभिनेता, हमारी फिल्मी तारिकाएँ, मॉडल्स, राजनेता, धनपति, बल्लेबाज, धावक, फुटबॉलर, गायक आदि किसी को भी हम देखें। उनके जीवन का पूर्णावलोकन करें तो हमें उन सबके ऊपर अनित्यता का चक्र घूमता नजर आएगा। हमें बोध होगा कि ये रूप, बल, अधिकार, शक्ति, सामर्थ्य, पद, प्रतिष्ठा यहाँ तक कि हमारा अपना शरीर भी हमेशा एक-सा रहने वाला नहीं है।

बदलाव, परिवर्तन सृष्टि का चिर सत्य है। सूर्य भी एक दिन में तीन दशा को प्राप्त करता है। उसका भी उत्थान और पतन होता है। उसे भी एक ही दिन में तीन भिन्न-भिन्न दशाओं का भोग बनना पड़ता है। फिर हम क्या हैं ? बड़े-बड़े चक्रवर्ती, महाराज का वैभव क्षीण हो गया। इतिहास साक्षी है

राजा मुंज जिसके पास हजारों हाथी थे, उन्हें द्रविड़ों ने हरा दिया और भीख मांगकर खाने को मजबूर कर दिया। राजा विक्रमादित्य को भिक्षुता करनी पड़ी। ब्रह्मदत्त छद्म वेश में भटकते फिरे। प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक आख्यानों और उदाहरणों से हम अनित्यता का बोध प्राप्त कर सकते हैं।

जगत् के इस नश्वर स्वरूप का चिंतन जब भी भव्य प्राणी शांत चित्त से करेगा उसे अनित्यता अपना परचम फहराती हुई नजर आएगी। सत्य तथ्य का बोध होने पर दृष्टि का परिमार्जन होगा। आत्मा अनित्य भावना रूपी जल से अभिस्नात होती रहेगी। जगत् की क्षुद्र बातें उसे प्रभावित नहीं करेंगी। उसके समक्ष अनित्य जीव लोक ही मुखर होगा, चित्रित होगा। स्पष्ट भासित होगा और आत्मावलोकन में वह प्राणी अनित्यता, क्षण भंगुरता, नश्वरता को दृष्टिपथ पर नृत्य करते देखेगा। फिर उसके नेत्र वैराग्य से सने होंगे। हृदय निर्वेद से लबालब होगा। अनन्तकाल का पर्यालोचन करने पर जीव को इस अनित्यता की गहरी प्रतीति होने लगेगी। उसे इस संसार के अनित्य स्वरूप का बोध होने लगेगा। मन गहराइयों से समझने लगेगा।

पिछले पाँच हजार सालों पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कितनी सभ्यताएँ आईं और विलीन हो गईं। कितने राजवंश नाम शेष रह गये। नंद, मौर्य, हूण, परमार, सिसोदिया, सुल्तान और मुगल। निकट में वह ब्रिटिश, जिसका सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। पूरे विश्व पर जिन्होंने अपना झंडा फहराया। जिनके पास पैसा, पद, बल, सेना, शक्ति और बुद्धि की कोई कमी नहीं थी, वे अंग्रेज भी लुप्त हो गये। कोई नाम लेने वाला नहीं रहा। कोई रोने वाला नहीं बचा। वे महल, भवन, अन्त:पुर, रियासतें जिनमें परिंदा भी पर न मार सके ऐसा बंदोबस्त था, पर सब कुछ नष्ट हो गया, लुट गया, हड़प लिया गया, बर्बाद हो गया या नेस्तनाबूद हो गया। जो सभ्यताएँ, राजवंश, नगर, मोहन जोदड़ो, हड़प्पा एवं अन्य जो सरस्वती के अंचल में किसी समय थीं आज खण्डहर दिख रही हैं। मिश्र के पिरामिड गवाह हैं कि बड़े से बड़े बादशाह को भी परिवर्तन का चक्र नहीं छोड़ेगा।

बाहरी जगत् का चिन्तन करने पर जीवन का ध्यान अन्तर में जाने लगेगा। वह इस अनित्यता का दर्शन निज में करेगा कि जब इतने वैभव,

तिलिस्म और सामर्थ्य से सम्पन्न लोग भी नामशेष रह गये तो हे जीव ! तू निज को देख अन्तरावलोकन कर, स्वयं पर दृष्टि केन्द्रित कर, क्या तू नित्य है ? क्या तू हमेशा रहने वाला है ? क्या तेरा रूप, बल, पद, वाक् वैभव, बुद्धि, स्मृति और यहाँ तक कि तेरा शरीर क्या वह नित्य है ? क्या वे स्थिर हैं ? क्या वे शाश्वत हैं ? क्या वे समय के बहाव में नहीं बहेंगे ? क्या उनका क्षरण नहीं होगा ? क्या मेरी जुटाई हुई सारी कलाएँ, सीखे हुए सारे गुर और हुनर, बनाए हुए सारे रिश्ते-नाते, मित्र, परिचय, परिवार नित्य रहेंगे ?

हे जीव ! तू चेत। जब शरीर भी नित्य नहीं है तो नाते-रिश्ते कहाँ से नित्य होंगे, जबकि वे शरीर से ही सम्बद्ध हैं। यदि तू सम्यक् रीति से मनन करे तो पारिवारिक मोह भी तुझे अपनी सत्यता का दर्शन कराएगा। जिनके प्रति तू मोहित है, मुग्ध है, पापाचरण में रत है, जिनके संरक्षण के लिये तू नाना प्रकार के कार्य एवं प्रयत्न निरन्तर करते हुए कर्मों का बन्धन आत्मा के साथ कर रहा है, वे नाती भी अनित्य हैं। उनका मोह अनित्य है। उनका प्रेम, राग, अपनत्व, ममत्व, अनुबंध, कसमें, वादे, प्यार, वफा, सभी कुछ अनित्य है। किसी का भी एतबार करना इस अनित्य जगत् में हितकारी नहीं है। तू इनकी अनित्यता पर चिन्तन कर, मनन कर, अन्तरावगाहन कर तो तुझे बोध होगा। तेरी मोह-आसक्ति इस अनित्य लोक से हटेगी। तेरे मुँह से भी राजा राणा छत्रपति की ध्वनि गुंजित होगी। तू भी अणिच्चे जीव लोगम्मि के भावार्थ को समझ पाएगा। तेरी आत्मा भी **'इमं सरीरं अनिच्चं'** की भावना से भावित होगी और तू भी अनित्य रूपी झरने से बहने वाले उस आनन्द का पान करने में समर्थ हो पाएगा। तेरा भ्रान्त मस्तिष्क शान्त हो जाएगा। अधीरता पलायन कर जाएगी। प्रशान्तता किलोल करने लगेगी। मोह प्रक्षीण होने लगेगा और तू परम समाधि का आस्वादन कर पाएगा।

अनित्य... अनित्य... अनित्य... जगत् के सारे प्रपंच अनित्य...

सुख अनित्य... दुःख अनित्य... लाभ अनित्य... हानि अनित्य... जीवन अनित्य... मरण अनित्य... संसार की सारी पर्यायें परिवर्तनशील हैं, बदलने वाली हैं। सदा-सर्वदा एक-सी रहने वाली नहीं हैं। इस सत्य को

समझो। इस तथ्य को स्वीकारो, अपने अन्तर में जगत् के अनित्य स्वरूप की प्रतिष्ठा करो। शान्त, एकान्त, नीरव स्थल का चयन करो और अपने भीतर को शान्त करके लम्बे, गहरे श्वांसों की तीन आवृत्ति करो। श्वास समीक्षण करते हुए मन को अनित्य भावना से भावित करें। श्वास समीक्षण के पश्चात् शरीर समीक्षण एवं उसकी अनित्यता पर चिन्तन करें। मुझसे संबंध सारे पदार्थ जिनसे मेरा मोह है, उन सबकी अनित्यता पर चिन्तन और इन सारे अनित्य संसार में द्रव्य रूप आत्मा ही नित्य है, ऐसी प्रतीति की गहराई को अपने भीतर अनुभव करना अनुभूति दशा में आत्मा का साक्षात्कार आत्म दर्शन, आत्म समीक्षण तक निज को ले जाना।

सिर्फ पढ़ें नहीं, इसे करें भी। चलिये बैठिये... आँखें बन्द कीजिये... और अनित्य भावना से अपने को भावित करते हुए

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार

का उच्चारण करें। लयबद्ध उच्चारण करें। पुन: पुन: उच्चारण करें। हृदयपूर्वक उच्चारण करें। रोम-रोम में उच्चारण करें। अनित्य भावना को सघन बनाते जाएं। मन शाश्वत आत्मा को जानने लगेगा। अनित्यता से होने वाला संताप दूर हो जाएगा। अनित्य का दु:ख नित्य के सुख के समक्ष फीका पड़ जाएगा... !!!

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

अशरण भावना

उद्यत उग्ररुजा जनकायः, कः स्यात्तत्र सहायः।
एकोऽनुभवति विधुरुपरागं, विभजति कोऽपि न भागम्।।

मनुष्य का शरीर जब प्रचंड रोग से ग्रस्त होता है तब उसके निवारण में कौन व्यक्ति सहायक बनता है? चन्द्र-ग्रहण के समय चन्द्रमा अकेला ही राहुग्रास का अनुभव करता है, कोई भी उसमें भागीदार नहीं बनता।

-शान्तसुधारस

प्रसिद्ध उद्योगपति, धनपति जिन्होंने अपना नाम देश-विदेश फैलाया, वे युवा अवस्था से व्यवसायिक क्षेत्र में अपने पैर जमाने शुरू किये और जीवन की दुपहरी तक प्रसिद्धि पा गए। सांझ होते-होते वे अपना नाम और धन भारत में प्रथम दर्जे में देखते थे। एनर्जी, पेट्रो, टेलीकॉम के क्षेत्र में अपना सफलतम हाथ आजमाकर प्रसिद्धि एवं धन के शिखर पर जा बैठे। जिनका एक-एक कदम सोचा-समझा था। किसी को उठाना या गिराना उनके बाएं हाथ का खेल था। राजनैतिक क्षेत्र में दांव-पेच चलाना भी उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। मंत्री-मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक उनकी पहुंच थी। पैसे का दौर चला तो चलता ही गया।

कौन मुँह उठा रहा है, उड़ा दो। कौन चिल्ला रहा है, समझा दो। कौन तीन-पाँच कर रहा है, चुप करा दो। कौन उसके प्रतियोगी के रूप में उभर रहा है, उसे साफ कर दो। भारतीय आर्थिक नीतियाँ जिसके आधार पर निर्धारित होने लगी थीं। किसे, कैसे हटाना, उसके यहाँ आई. टी. की रेड डलवाना, बैंक से लोन बन्द करवाना या उस आदमी का ही पत्ता साफ करवाना उनके लिए कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी। दौलत, शोहरत, हिम्मत, जज्बा और जुनून का प्रतीक था वह शख्स।

नाम था धीरू भाई अम्बानी।

सिर्फ 15 हजार रुपयों में विमल टेक्सटाइल शुरू करने वाले उस शख्स के लिए कुछ भी असम्भव नहीं था, ये हमें भली-भाँति पता है। एक दिन अचानक धीरू भाई को अटैक आया। लोगों में, समाचार पत्रों में, न्यूज चैनल्स पर एक ही

खबर...। कोकिला बेन अवाक् ... मुकेश-अनिल सहित पूरी रिलायन्स इंडस्ट्री और औद्योगिक जगत् शॉक्ड ...

अम्बानी! रिलायन्स ग्रुप का मालिक, भारत का बेताज बादशाह, सुख-वैभव, अधिकार, पॉवर, माइण्ड का स्रोत धीरू भाई ब्रीच कैंडी अस्पताल में दाखिल हो गया। इमरजेन्सी वार्ड में वेण्टीलेटर पर, जीवन और मौत से संघर्षरत अंबानी ...

असहाय अंबानी ...
अशरण अंबानी ...
कातर अंबानी...
कारुणिक अंबानी ...
अत्राण अंबानी ...

वह अधखुली नजरों से देख रहा है। कोई मुझे बचा ले। कोई मेरा रक्षण कर दे, कोई मुझे पनाह दे दे। कोई मुझे रोग के पाश से मुक्त कर दे, इस मारणान्तिक कष्ट से बचा ले।

पर...

कई दिनों की मशक्कत, बड़े से बड़े डॉक्टर, अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी एक्सपर्ट, वैद्य सबकी नजरें झुकी हुई थीं। सबके मुख कुम्हलाए हुए थे। नेत्र भयग्रस्त थे। मन भयाकुल, चिन्तातुर था। सभी अपनी तमाम ताकतों, कलाओं एवं दवाओं का प्रयोग करके उस शख्स को बचाना चाह रहे थे। सबका प्रयास और प्रयोग एक तरफ।

दूसरी तरफ मुम्बई के सर्वाधिक महंगे और श्रेष्ठ अस्पताल में सफेद वस्त्रों में लिपटा धीरू भाई का शरीर असहाय, नजर बेपनाह, मुख दुखित। किसी तरह बच जाऊँ का चिन्तन करते धीरू भाई। महंगी रोल्स रॉयस में घूमने वाला अंबानी, आरामदायक कुर्सियों पर बैठने वाला अंबानी, बिजनेस काउंसिलिंग वाला अंबानी, बुद्धि और बल का बेताज बादशाह अंबानी आज निरीह पड़ा है। कोई बचा ले, ये लालसा लिए। कोई रक्षा करे, ये भावना लिए। कोई दु:ख बांट ले, ये विचार लिए।

आखिर उसे कोई शरणदाता प्राप्त हुआ और वह इस मोहमय, नश्वर एवं क्षणभंगुर संसार से रुखसत हो गया। सारा धन-वैभव, परिवार, पूरे मुल्क में फैला हुआ वैभव, उसे बचा नहीं सका, शरण नहीं दे सका, त्राण नहीं बन पाया।

हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने वाले, राष्ट्रपिता की उपमा से उपमित, जन-जन की हार्दिक श्रद्धा को जिन्होंने पाया था वे भी एक क्षण में इस दुनिया से चल बसे थे। उन्हें मौत के शिकंजे से कोई नहीं बचा पाया। हम सिर्फ पिछले 70 साल के महान् कहलाने वाले भारतीय विभूतियों की ही चर्चा करते हैं। देश के सर्वाधिक लोकप्रिय प्रधानमंत्री माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू मृत्यु के कुछ दिन पहले तक 75 साल की उम्र में भी इस कदर उर्जस्वित थे कि लोग दांतों तले अंगुली दबाने लग जाते। हेलर केलर नामक एक प्रज्ञा चक्षु महिला ने उन्हें छुआ और उनके चेहरे पर हाथ फेरकर कहने लगी- ओह! क्या मैं संगमरमर की प्रतिमा को छू रही हूँ। भारतीय राजनीति के सूत्रधार, आजादी के पश्चात् नवभारत के प्राण, उच्चकोटि के विद्वान्, विचारक, वक्ता, व्यवहार कुशल, कूटनीतिज्ञ, धार्मिक, पंचशील को जगत् में पुन: स्थापित करने वाले, गहन चिंतक, भारत एक खोज और ग्लिम्पसेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री नामक प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक, एक अच्छे पिता, प्रियदर्शिनी को इंदिरा बनाने वाले, हिन्दुस्तानियों के दिलों पर राज करने वाले नेहरू जी चल बसे। उन्हें कोई शरण देने वाला नहीं बना, कोई त्राता नहीं बना। कोई द्वीप नहीं बना, कोई रक्षक नहीं बना। अशरणभूत हो वे इस जहाँ से चल बसे।

नाजी शासक हिटलर का वैभव, प्रभाव, अनुशासन, सैन्यशक्ति, स्मृति और कूटनीति द्वितीय विश्वयुद्ध में जोरों पर थी। उसके ही देश में उसे मृत्यु मुख में जाना पड़ा। किसने बचाया? किसी ने नहीं।

सभी खड़े रह गये ... देखते रह गये ... और उनकी मृत देह पड़ी रही।

स्टेलिन के प्रभाव और उसके बारे में कहा जाता है कि मानव जाति के इतिहास में इतनी सुरक्षा व्यवस्था शायद ही किसी एक आदमी के लिए

की गई होगी। वह रात कहाँ रहेगा किसी को नहीं मालूम रहता। उसकी खुफिया एजेंसी को पता होता कि स्टेलिन कहां है। वह जिस बंगले में रहता उसमें 10 या 20 कमरे होते। उस बंगले पर सात पंक्तियाँ सैनिकों की होती। पहली को मालूम होता कि स्टेलिन पहली में है, दूसरी को मालूम होता दूसरी में, तीसरी को मालूम होता तीसरी में। इसी तरह चौथी को चौथी में, पाँचवीं को पाँचवीं में, छठी को छठी में एवं सातवीं को मालूम होता कि सातवीं में है। सुरक्षा का इतना बंदोबस्त करने के बाद भी उसे मरने से कोई नहीं बचा सका।

इंदिरा गांधी के पास जेड सुरक्षा थी, पर नहीं बच पाईं। उनके ही अंग रक्षकों ने उन्हें मार दिया। अमेरिका के लोकप्रिय राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन गोली से उड़ा दिये गये। किसी हॉल में नाटक देखने गये और वापस नहीं लौटे।

ये हुई इतिहास की बात।

हम थोड़ा पौराणिक कथाओं पर दृष्टिपात करें तो तीर्थंकर भगवान को भी इस काल बलि ने नहीं छोड़ा। चक्रवर्ती, जिनकी सेवा में 16 हजार देवता निवास करते हैं, वे भी मृत्यु मुख से नहीं बच पाए। वासुदेव कृष्ण, जिनके प्रभाव, ऋद्धि, सिद्धि, लब्धि, धर्मसम्पन्नता और दीर्घ दृष्टि का मुकाबला नहीं था, ऐसे कर्मयोगी भी काल के गाल से छूट नहीं पाए।

क्या बात करें हम, जब इतना ऋद्धि सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, लब्धि सम्पन्न रावण, जिसे एक हजार विद्याएँ सिद्ध थीं, तीनों लोकों में जिसका भय व्याप्त था, जिसकी हुंकार सुनकर इन्द्र भी कांपता था, वह भी यमराज के पंजे से नहीं बच पाया। और तो और देवलोक का इन्द्र महाद्युति, महालेश्या, महाऋद्धि, महाप्रभाव का धारक इन्द्र, वह भी रोते-रोते देवलोक से विदा लेता है। वह भी रत्नों को देखकर झूरता है, पुष्करणियाँ देखकर रोता है, देवियों को देखकर रुदन करता है, विमानों को देखकर परिताप को प्राप्त होता है। हा! हा! करके दु:खी होता है। हा ये सब यहीं रह जाएगा। छूट जाएगा मेरा नन्दन वन, मेरा सिंहासन, मेरी सुधर्मा सभा, मेरा वज्र, मेरा मुकुट, मेरी

परिगृहीता देवियाँ, मेरा कल्पवृक्ष, ये सभी रह जाएगा। मुझसे जुदा हो जाएगा, मुझसे विदा हो जाएगा।

उस रुदन से उसे छुड़ाने वाला कोई नहीं होता। वज्र के एक प्रहार से मंजरी की भाँति सिर के टुकड़े-टुकड़े करने वाला इन्द्र ...

परमात्मा का परमभक्त इन्द्र ...
प्रभु का जन्माभिषेककर्ता इन्द्र ...
केवलोत्सव करने वाला इन्द्र ...
समवसरण का रचनाकार इन्द्र ...
84 लाख विमानों का स्वामी इन्द्र ...
दक्षिण जम्बू पर राज करने वाला इन्द्र ...
महाभिनिष्क्रमण महोत्सव को मनाने वाला इन्द्र ...
तीन चुटकी में जम्बूद्वीप की 21 परिक्रमा करने वाला इन्द्र ...

मृत्युकाल के प्राप्त होने पर उस दिव्य दुनिया को छोड़ देता है। किंवा उसे छोड़ना पड़ता है। कोई भी उसे शरण देने वाला, त्राण देने वाला, संबल देने वाला नहीं है। सारे देव-देवी खड़े होते हैं, चिंतित होते हैं, द्रवित होते हैं, व्यथित होते हैं, पर आयु क्षय होने पर उसे मौत से कोई नहीं बचा पाता। वह तड़प-तड़प कर देहोत्सर्ग कर देता है।

जब इतने महान् बलशाली, ऋद्धिशाली, लब्धिशाली पुरुषों को भी काल से बचाने वाला कोई नहीं है तो हे जीव! तू चिंतन कर, मनन कर, इस अशरण भावना पर अनुप्रेक्षा कर, जगत् के सत्य को समझने का प्रयत्न कर। तुझे बोध प्राप्त होगा तो तेरे भीतर भी निर्भयता प्रकट होगी। तेरा मन भी मरण भय से व्याकुल नहीं होगा। तू भी मृत्युकाल के उत्पन्न होने पर व्यथित नहीं होगा, परिताप नहीं करेगा। जगत् के सभी प्राणियों का अन्त होता देख और उनका कोई त्राता न देख तुझे भी सम्यक् बोध उत्पन्न होने लगेगा। तू भी व्याकुलता रहित बनेगा।

रे जीव ! तू शान्त एकान्त समय में अपने आपको अशरण भावना से भावित कर। तू सोच की जब बड़े से बड़े तांत्रिक, मांत्रिक, वैद्य, ज्ञानी,

ध्यानी, मौनी, लब्धि सम्पन्न, ऋद्धि सम्पन्न, बुद्धि सम्पन्न मनुष्यों को भी रोग से कोई बचा नहीं पाया है, बुढ़ापे से छुड़ा नहीं पाया है, मृत्यु को भगा नहीं पाया है फिर तू तो पामर है। तेरी बिसात ही क्या है ? तुझे कौन बचायेगा? तू तो पंचमकाल के औदारिक शरीर और सेवार्तक संहनन का धारी है। तेरा कौन रक्षक होगा? तुझे कौन बचायेगा? तेरा कौन सहारा होगा? जिन्हें तू अपना मान रहा है वे पारिवारिक जन भी तुझे नहीं बचाएंगे, तुझे नहीं संभालेंगे।

तू चिंतन कर तो तेरे मुँह से भी **'दल बल देवी देवता'** की ध्वनि निस्सरित होगी। तेरे मन में **'णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा'** के भाव उद्भूत होंगे। तू भी अपने अंतर में यह जान पाएगा कि जब कोई सहारा नहीं है तो आखिर कौन सहारा है ? जैसे सिंह, मृग को पकड़ कर ले जाता है तब जंगल में कोई भी उसे बचा नहीं पाता, वैसे ही मृत्यु के मुख में जाते हुए पुरुष को इस जगत् में धर्म के अलावा कोई भी शरणभूत नहीं है।

इस प्रकार गहन चिंतन करने पर तेरे मुँह से भी **'एक्को हु धम्मो नरदेव ताणं'** एक धर्म ही तेरे लिए त्राण है के भाव उत्पन्न होंगे। तेरे शुभ भाव, अध्यवसाय, लेश्या, परिणाम ही दुर्गति से तुझे बचा सकते हैं। तुझे नरक से त्राण दिला सकते हैं। निगोद के दु:खों में पड़ने से रोकेंगे। तू याद कर अनाथी मुनि को, युगबाहु को, सुग्रीव के पूर्व भव को, चंडकौशिक को, वरुणनाग नतुआ को, नाग के जोड़े को, जिसे स्वयं प्रभु ने नवकार सुनाया, धर्म की शरण दी और वे सग्दति को प्राप्त हुए, तो तेरे मुख से भी बरबस धम्मं सरणं पवज्जामि निकलेगा। तू भी केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि पर प्रतीति करेगा।

तेरा मन भी अशरण भावना रूपी झरने में स्नान करके आत्म-परितोष को प्राप्त होगा। तुझे भी परमात्मा के परम पावन सान्निध्य एवं माहात्म्य का बोध होगा कि मेरा जगत् के पदार्थों, पारिवारिक जनों, स्वजनों, मित्रों, प्रभावों, अधिकारों, नीतियों, नियमों को शरणभूत मानने का जो मानस बना है वह मिथ्या है। इस भयावह जगत् में प्रभु का पावन प्रकाश ही

मुझे मार्ग सुझाएगा। परमात्म स्मरण रूप नौका ही मुझे संसार सागर से पार उतारेगी। वे ही एक मात्र मित्र हैं, बांधव हैं, सखा हैं, सहायक हैं, रक्षक हैं, मार्गदर्शक हैं। सारे विश्वास टूट सकते हैं, पर यह विश्वास अटूट है। प्रभु तुम मेव सच्चं, तुम मेव सरणं, तुम मेव लाभं, तुम मेव गइ, तुम मेव पइट्ठा, तुम मेव दीवो, तुम मेव ठाणं यानी तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं शरण हो, तुम्हीं त्राण हो, तुम्हीं गति हो, तुम्हीं प्रतिष्ठा, तुम्हीं द्वीप हो और प्रभु तुम्हीं एक मात्र स्थान हो, जिससे मैं दुर्गति से बच सकूं, नरक से छूट सकूं, निगोद में जाने से रुक सकूं। आप ही हो जो मुझे संसार के सारे दु:खों से त्रायक हो। ऐसा भाव अशरण भावना भाने पर आता है। उसका अन्तर आश्वस्त हो जाता है, स्वस्थ बन जाता है।

अशरण... अशरण... अशरण...
जगत् के सारे संबंध मेरे लिए अशरणभूत हैं...
कोई भी मुझे त्राण नहीं दे सकता है...
मैं अकेला ही आया था और अकेला ही जाऊँगा...
एकाकी एवं अहम्... अकेला... निपट अकेला...

मेरा सारा वैभव भी मुझे मृत्यु मुख से बचा नहीं सकेगा। गहरा श्वास लें, समीक्षण करें। जगत् का निरीक्षण करें, अवलोकन करें। अपने मानस में अशरणत्व की प्रतिष्ठा करें। वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति ममत्व बुद्धि का त्याग करें। यदि तुम अशरण भावना से भावित हो जाओगे तो निश्चित ही ममत्व बुद्धि क्षीण होने लगेगी। शान्त, एकान्त, नीरव स्थल का चयन और अशरण भावना का चिन्तन देखें। श्वास समीक्षण... क्या सांसें शरण देंगी? नहीं। तो क्या शरीर देगा? नहीं। तो क्या वैभव शरण देगा? नहीं। तो क्या पद-प्रतिष्ठा, सम्पत्ति...

कौन है जो शरण देगा ?

तब समीक्षण धारा में बहते हुए अशरण की प्रतीति करो। मन शान्त, गहरे श्वासोच्छ्वास के साथ अशरण भाव में रमण करे। फिर इस सारे अशरणभूत संसार में एक मात्र शरणदाता जिनेश्वर भगवन्त ही तुम्हें नजर

आएंगे। धर्म ही शरणदाता प्रतीत होगा। आत्मा ही सरण दयाणं लगेगा। गहराई पूर्वक, अन्तरावलोकन पूर्वक अशरण भावना में अंतर को भावित करें। मन में जिनेन्द्र भगवन्तों के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न करें। उसे वर्धमान दशा में ले जाएं। वही एक मात्र शरण है। वही एक मात्र त्राण है। वही एक मात्र त्राता है।

बैठिए मत, चलिए। चिन्तन करिये, आँखें बन्द, कमर सीधी, ज्ञानमुद्रा, दीर्घ श्वास और अशरण भावना का चिन्तन। गहरा चिन्तन करते हुए

दल-बल देवी-देवता... मात-पिता परिवार...
मरती बीरियां जीव को... कोई न राखनहार...

का उच्चारण लयबद्ध करें। पुन: पुन: करें। हृदय से करें, रोम-रोम से करें। अशरण भावना सघन होती चली जाएगी, गहरी होती चली जाएगी। मन धर्म की शरण में पहुँचने लगेगा और अशरण का भय समाप्त होने लगेगा।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

संसार भावना

गलत्येका चिन्ता भवति पुनरन्या तदधिका,
मनोवाक्कायेहाविकृतिरतिरोषात्तरजस:।
विपद्वर्त्ताऽऽवर्ते झटिति पतयालो: प्रतिपदं,
न जन्तो: संसारे भवति कथमप्यर्तिविरति:।।

व्यक्ति की एक चिन्ता पूरी होती है और पुन: उससे बड़ी अन्य चिन्ता उसके सामने उपस्थित हो जाती है। वह मानसिक-वाचिक-कायिक चेष्टा के विकार से उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष के कारण कर्मरजों का उपचय करता है और पग-पग पर एक के बाद एक दूसरे विपत्तिगर्त के आवर्त में तुरन्त गिर जाता है। अत: उस व्यक्ति का इस संसार में दु:ख से छुटकारा किसी भी प्रकार नहीं होता।

-शान्तसुधारस

एक किशोर परमात्मा के मंदिर में बैठा था। हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए, आँखें बंद किये। मंदिर के मुहाने पर स्वर्ण के दीप, रत्नों की नक्काशी, गर्भ गृह पुष्पों से मंडित, अगर, लोबान, केसर, चंदन, कस्तूरी की गंध से गंधवटी के सदृश बना हुआ था। वह व्यक्ति उस समय एकाकी ही प्रभु की प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक था। कल से दसवीं बोर्ड की परीक्षा शुरू होने जा रही थी और मन में इस परीक्षा में सरलता से पास हो जाऊँ ये अरदास लिये वह प्रभु के दरबार में दत्तचित्त था। आधे घंटे की उपासना के बाद वह लौटा।

कुछ दिन बीते...

सूरज उग चुका है। वह अपनी प्रखर किरणों से नभमण्डल को प्रकाशित कर रहा है। उसकी किरणें उस मन्दिर को प्रकाशमान कर रही हैं। सोने के सदृश किरणों से मंदिर की चमक कई गुना बढ़ चुकी है। वही युवक नाचता-गाता हुआ मंदिर में प्रविष्ट हुआ। उसके मुख पर उल्लास है, आँखों में चमक है, कण-कण रोमांचित है। वह अपना रिपोर्ट कार्ड लेकर सीधा मंदिर पहुँचा है, क्योंकि वह मेरिट में आया था।

कुछ वर्ष बाद...

आज उसका मन उदास है, आँखें चिंतित हैं, भविष्य अनिश्चित है। स्नातक हो चुका वह युवक प्रभु के समक्ष उपस्थित है याचना लिये ... आरजू लिये ... अरदास लिये कि प्रभु मैं आपका एक भक्त हूँ, एक अच्छे पगार वाली नौकरी मिल जाए तो मैं आपका ऋणी रहूंगा।

कुछ दिन और बीते...

काला कोट, काली पेंट, गले में टाई, एक हाथ में सूटकेस, दूसरे में फाइल और जॉइनिंग लेटर लिए हंसता-गाता प्रभु के पास आता है। आँखों में आँसू हैं, मन हर्षित है, नजर प्रभु प्रतिमा पर केन्द्रित है। हृदय सुकून से भरा हुआ है। एक हाथ में फाइल, दूसरे में सूटकेस लेकर प्रभु के पास नियुक्ति पत्र रखकर खुशी व्यक्त करता है।

समय और बीता ...

अब उसकी आँखों में चमक है, चेहरे पर आभार है, हृदय में तरंगें हैं, होठों पर गीत है। अंगुलियाँ अंगूठियों से भरी, गला हारों से लदा, हाथ में सोने की ब्रासलेट, सुनहरे रंग का कुर्ता, सफेद रंग का पजामा, सिर पर चुनरी की पगड़ी पहने, उस पर मोर पंख धारे, दूसरे हाथ में तलवार संभाले प्रभु के परिसर में प्रवेश कर रहा है। आज उसके पीछे उसकी पत्नी है। शादी के बाद सीधा मंदिर पहुँचा आशीर्वाद लेने उस देवता का। सुखद अनागत के सपने संजोए, सुनहरे भविष्य की कल्पना लिए, मन आशाओं से भरा है। हृदय आनंद से भरा है। मुख मुस्कुराहट से सना है। आँखें अपनी नई नवेली दुल्हन को देखकर प्रभु को देखने में फख्र महसूस कर रही हैं।

समय और आगे बढ़ा ...

गोद में कोई है, जिसे लेते हुए उसकी पत्नी आगे बढ़ रही है और वह उसका अनुगमन कर रहा है। आज वह भरा महसूस कर रहा है। बड़ी मिन्नतों के बाद कुछ पाया है। आशाओं के बाद, अभिप्साओं के बाद पाया है। उस प्राप्ति से उसे आत्म संतोष है। मन गद्‌गद् है। हृदय प्रफुल्लित है। दृष्टि आश्वस्त है कि चार साल की प्रतीक्षा के बाद एक सुन्दर, सलोने, राजकुमार पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है। उसे प्रभु के प्रकोष्ठ पर रखकर उसकी बलाइयाँ ली जाती है। बिठौना लगाया जाता है जो कि प्रभु की दीप प्रज्ज्वलन की अवशिष्टि थी। उसे लगाकर उसके सुखद भविष्य के चिन्तन की आशा लिये वह प्रभु को झुकते हुए बहिर्गमन करता है।

पीठ पर बैग, हाथ में टिफिन बॉक्स, पैरों में मोजे, नीचे नीली निकर, ऊपर सफेद शर्ट, गले में टाई पहने एक किशोर को अपने साथ लेता हुआ वह युवक उसे समझाते हुए मन्दिर में ला रहा है। युवक उस किशोर से कह रहा है - देख ये भगवान हैं, जिन्होंने हमें तुझे दिया है। मेरी नौकरी, मेरा मकान, मेरा ब्याह, मेरा वैभव, जो कुछ है मेरे पास, वो इन्हीं का प्रसाद है। मेरा कुछ नहीं है। इन्हीं की दया से मुझे ये मुकाम हासिल हुआ है। तुम भी यहाँ मस्तक झुका कर आशीष लो जिससे तुम्हें भी सफलता प्राप्त हो। तुम भी अग्रगामी बनो। इन शब्दों का उच्चारण करते हुए उसकी उड़ती नजर पुत्र के चेहरे पर पड़ती हुई प्रभु को निहारने लगी। वह कल्पनालोक में खो गया कि पुत्र बड़ा हो जाएगा, फिर मैं सुखद जीवन यापन करूंगा, वार्धक्य के आगमन पर पुत्र रूपी लाठी का सहारा रहेगा किंवा बनेगा।

दशकों बाद की बात है ...

बाल सफेद हो चुके हैं। आँखों पर चश्मा है। चेहरा बुढ़ापे को दर्शा रहा है। लाठी अशक्तता की साक्षी बनी हुई है। सफेद कुर्ता, सफेद पायजामा, सफेद रूमाल लिये भारी कदमों, टूटे मन, फीके चेहरे, दुखित हृदय से धीरे-धीरे वह शख्स मंदिर के प्रांगण को पार करते हुए प्रभु प्रतिमा की ओर गतिशील है।

आज ये दरबार बदला-सा लग रहा है। दीपक का प्रकाश, कपूर की गंध, फूलों की सजावट, घण्टों का निनाद, मंत्रों का उच्चारण, गीतों की ध्वनि, भक्तों का सैलाब, आगन्तुकों का कलरव और यहाँ तक कि उस परम प्यारे परमात्मा, जिनकी प्रतिमा उसे ताउम्र लुभा रही थी, ढाढ़स दे रही थी, हौसला बढ़ा रही थी, आगे बढ़ा रही थी, जिन्दगी के हर मोड़ पर सहारा दे रही थी। हाथ थामे खड़ा वह भव्यातिभव्य दीदार जिसे देखते ही वह मचल उठता था, नाच उठता था, गा पड़ता था। अपने सारे दु:खों को विस्मृत कर देता था, वह त्रिभुवन मोहिनी मूर्ति भी उसे निस्तेज प्रतीत हो रही थी। वह प्रभु के नेत्रों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का अनुभव नहीं कर रहा था। उसकी आशाओं का भव्य प्रासाद परिपूर्ण रूप से ध्वस्त, नष्ट, नेस्तनाबूद हो चुका

था। उसकी परम प्रेमिल पत्नी इस संसार से चल बसी। पुत्र भी आशानुरूप सम्मान नहीं देता है और पुत्रवधू तो पहले ही पराई है।

वह टूट चुका था। अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दिलवाने के बहाने उसे विदेश भेजा। उसने वहीं की किसी फिरंगी युवती से विवाह कर लिया और वहीं सेटल हो गया। अब यहाँ आने को उसका मन नहीं है। अपनी माँ की लम्बी बीमारी और उसके बाद देह त्याग के बाद भी वह मिलने तक नहीं आया। इन सब से उसका मन व्यथित हो गया था। दिल छलनी हो गया था। आशाएँ पंख वाले पक्षियों की भाँति उससे दूर जा चुकी थीं। मन आज से 60 साल पहले 10वीं की यादों में चला गया। कल क्या था, आज क्या हो गया! वो लम्हे... वो यादें... वो अपनों का सहारा... अपनों से मिलने वाला सुकून...

सुखद भविष्य रूपी महल पर स्वजन रूपी सीढ़ियों द्वारा चढ़ने का असफल उपक्रम आँखों के समक्ष टूटते-बिखरते देख, अपने घरौंदे के लिए पक्षी जैसे छटपटाता है वैसी ही छटपटाहट व वितृष्णा के भावों से भरा वह मानस कुछ भी सोच नहीं पा रहा है।

बस यही है संसार भावना। व्यक्ति क्या सोचता है और क्या हो जाता है? पूर्व में सुखद वस्तु पश्चात् में दु:खद हो जाती है। सुख-दु:ख, धूप-छांव की भाँति है। हास्य-शोक पासों की भाँति, रति-अरति पलड़ों की भाँति, आनन्द-विषाद पहिये की भांति, संवाद-विवाद चित्रपट्ट की भांति, अनुक्रोश-अनुताप बिजली के समान, जीवन-मरण बुलबुले के समान, इच्छा-अनिच्छा हाथी के कान के समान, पूर्ण काम रिक्त काम न मालूम ऐसे कितने प्रकंपनों-अनुभवों, स्पंदनों से ये जीवन स्पंदित होता है। न मालूम कितने द्वन्द्वों से प्रतिदिन उसका सामना होता है। एक ही जन्म में न जाने कितने तरह के अनुभवों से मनुष्य को गुजरना पड़ता है। विविधताओं, विचित्रताओं, विरूपताओं का नाम ही संसार है।

जो पुरुष उसे नहीं समझ पाता वह संसार के वैचित्र्य में स्थितप्रज्ञ नहीं रह पाता है। संसार, हिन्दुस्तान की सड़कों के सदृश है। जैसे हिन्दुस्तान की सड़कों पर कब कौन-सा वाहन, व्यक्ति, पशु, किस दिशा से आएगा नहीं

मालूम। कौन लाल सिग्नल तोड़ देगा नहीं पता। कौन नो पार्किंग में कार पार्क करेगा नहीं खबर। कब कौन आकर पीछे से आपको ठोंक देगा आप अन्दाजा नहीं लगा सकते। ठीक वैसे ही जीवन है। कब कौन-सी समस्या जीवन की किस अवस्था, वय और पड़ाव पर आ जाये नहीं पता। कब चलते-चलते रास्ता बदल जाए, देखते-देखते मंजर बदल जाए, खाते-खाते स्वाद बदल जाए, नहीं कहा जा सकता है। किनारे पर पहुंचने पर कश्ती को पता चलता है कि किनारे बदल गये, लोग बदल जाते हैं, रिश्ते बदल जाते हैं, पहचान बदल जाती है। यहाँ तक कि जिन्हें हम अपना कहते हैं इस विचित्र संसार में वे अपने भी बदल जाते हैं। मुखौटे बदले तो कोई बात नहीं पर इस संसार में शक्ल भी बदल जाती है। वस्त्र बदले तो कोई बात नहीं पर इस संसार में तो त्वचा भी बदल जाती है। बांसुरी बदले तो कोई बात नहीं पर इस संसार में तो कण्ठ ही बदल जाते हैं। ऐसा है ये संसार। एक ही जीवन में न मालूम कितनों से मिलना-बिछुड़ना होता है। कितने रिश्ते बनते-टूटते हैं। कितनों के साथ हम कुछ कदम चलकर जुदा हो जाते हैं। चिंतन पूर्वक देखें तो अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि एक ही जीवन इतने रूपों से भरा है। इतनी व्याख्याएँ, रचनाएँ, परिभाषाएँ इस जीवन नामक शब्द की हो चुकी हैं और नित्य प्रति नवीनता लिए जा रही हैं।

यह तो एक भव की चर्चा है। जब हम सर्वज्ञ कथित दृष्टि से संसार को देखें तो हमें भली-भाँति बोध होने लगेगा कि संसार का बदलाव क्या है और हमने इस संसार में क्या नहीं किया है। गत्यान्तर या भवान्तर में न मालूम कितने रूपों को हमने धारण किया। अनन्तकाल में हमने अनन्त भव किये तथा अनन्त भवों में अनन्त रूपों को धारण किया। जिसका मैं इस भव में पिता बना वह कभी न कभी मेरा पुत्र बना था। आज जो मेरा भाई है वह कभी न कभी शत्रु था। आज जो बहन है वह कभी न कभी पत्नी थी। आज जो पत्नी है वह कभी न कभी बहन रही है। आज का मित्र कल का बैरी था और आज का बैरी कल का मित्र हो सकता है।

एक भव में भी अठारह नाते हो सकते हैं। ये जम्बूकुमार की कथा से

भली भाँति स्पष्ट है। एक भव में भी जब इतनी विचित्रताएँ हैं फिर अनन्त भवों में तो इस जीव ने न जाने कितने खेल खेले। न जाने कितनी बार हारा, कितनी बार जीता। न मालूम कितने आँसू रोये। कोई गणना ही नहीं है। इस संसार का स्वरूप गणनातीत है। न जाने कितनी योनियों में कितनी-कितनी बार गया और विविध रूप धरे। जैसे रंगमंच पर सूत्रधार पात्रों से अनेक रूप बनवाता है, वैसे ही जीव भी कर्मरूपी सूत्रधार के हाथों न मालूम कितने रूप बना रहा है।

ये हुई रूपों की बात। हम अब गतियों के दु:खों की चर्चा करें। एक बार के जन्म-मरण में इस जीव को कितना कष्ट होता है, कितनी वेदना झेलनी पड़ती है। निगोद के कष्ट, नरक के दु:ख, तिर्यंच की वेदना, मनुष्य का अनुताप, देवों का असंतोष, देवियों की अतृप्ति, दीर्घायु और उसका क्षरण, च्यवन, ये सारा इस संसार में है। इस संसार में संसरण करते हुए जीव को अनेकानेक रूपों को धारण करना पड़ता है। तिस पर भी उसे हाथ लगती है सिर्फ अतृप्ति, असंतोष, कर्मबंध और पुन: पुन: जन्म-मरण का चक्र।

हे जीव ! तू सोचता है पैसे वाले सुखी हैं, पर वे भी बीमारियों से ग्रस्त हैं। रूप सम्पन्न सुखी है तो ईर्ष्या से ग्रस्त भी है। ज्ञानवान सुखी है तो अहंकार से आवृत्त भी है। नौकरी वाले को लगता है बिजनेसमेन सुखी है और बिजनेसमेन सोचता है नौकरी ठीक है। शादीशुदा सोचता है कुवांरा सुखी और कुवांरा सोचता है शादीशुदा सुखी। गांव वाले शहरी जीवन को सुखी मानते हैं, शहरी ग्राम में सुख खोजता है, ये मन है इसे आभासी दुनिया हमेशा लुभाती है, इसे हमेशा आकर्षित करती है। सदा से जीव इस आभासी संसार में ही मगन होकर कर्मबंध करता है। उसे संसार सदा रंगीला, चमकीला, रसीला प्रतीत होता है, परन्तु जब वह उस स्वप्न से बाहर आता है तब ज्ञात होता है कि मैं गलत था। फिर नरक और तिर्यंच के दु:ख ही शेष रहते हैं। जैसे मोबाइल पर दिखने वाले चित्र ज्यादा आकर्षित करते हैं हकीकत भिन्न होती है वैसे ही संसार...भ्रामक संसार... मोहक संसार... मारक संसार... दारुण संसार... भयानक संसार... खतरनाक संसार... इसी तरह जगत् की सारी पर्यायों पर तू जब गहन चिन्तन करेगा तो तुझे बोध होगा कि यह संसार

त्याज्य है, दु:खद है, धिक्कार योग्य है। इसका विश्वास करना बुद्ध पुरुषों का लक्षण नहीं है। ऐसे मायावी संसार को देखकर तेरे मुँह से भी निकल पड़ेगा-

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहीं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान
तेरे मुख से निस्सरित होगा- ये संसार असार ...
तेरा हृदय भी
जम्मं दुक्खं जरा दु:क्खं रोगाणी मरणाजिय
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो

के सत्य से आप्लावित होगा। तू भी खण मित्त सुक्खा बहु काल दुक्खा वाले संसार में नहीं रमेगा। तेरा मानस पटल भी तीर्थंकर भगवंतों की वाणी से अनुरंजित होकर आनन्द मग्न बन जाएगा। तू भी परम पुरुषों द्वारा आसेवित तृप्ति का, समाधि का, समत्व का पान करने में सफल हो पाएगा। फिर कामनाजन्य परिणामों में उत्पन्न कर्मबंध से तू मुक्त हो जाएगा। संसार के सत्य स्वरूप का संधान करने से सम दृष्टि की सम्प्राप्ति होगी। **'अस्मा आलितेणं भंते लोए'** के सत्य को आत्मसात् कर पाएगा और वैराग्य का पान करने में सफल होगा।

हे चेतन! तू जिन वचनों पर चिन्तन कर, प्रभु वाणी का मनन कर। जिनवाणी को हृदयंगम कर और गुरु वाणी का श्रवण करेगा तो संसार भावना तेरे भीतर भी स्पष्ट हो चलेगी। तेरा अन्तर भी संसार जन्य वितृष्णा से कोसों दूर गुफा में स्थित मुनि की भाँति ध्यान मग्न हो जाएगा। शान्त... निश्चल... निर्विचार... होकर संसार भावना का चिन्तन, श्वास समीक्षण, शरीर समीक्षण, संसार समीक्षण, अपने भीतर संसार के सत्य स्वरूप की प्रतीति कर। मन में संसार का चिन्तन कर। संसार के स्वरूप का सम्यक् बोध, सम्यक् दृष्टि पूर्वक मन की अनन्त गहराइयों से संसार को समझने का प्रयत्न कर। तू देख जीवों के स्वरूप को ... तू देख जन्म को ... तू देख मरण को ... तू देख गति को ... तू देख स्थिति को और तू देख परिवर्तनों को... इससे संसार भावना गहरी होती चली जाएगी।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

एकत्व भावना

यस्य यावान् परपरिग्रह-विविधममतावीवध:।
जलधिविनिहितपोतयुक्त्या, पतति तावदसावध:।।

जो परवस्तु के परिग्रह में होने वाली नाना प्रकार की ममताओं का जितना भार ढोता है वह व्यक्ति समुद्र में उतारी हुई नौका की भांति उतना ही नीचे चला जाता है-जलपोत में जितना भार होता है उतना ही वह पानी में डूब जाता है।

- *शान्तसुधारस*

एकत्व भावना

एक पक्षी आकाश की असीम ऊँचाइयों पर दिख रहा है। अकेला, एकाकी, असंग। वह निरन्तर एक ही दिशा में गमन करता जा रहा है। पक्षी का एक नाम है खग, जिसका आशय है आकाश में गति करने वाला। वह पंख पसारे उड़ रहा है। चलता जा रहा है। पक्षी बरखा से भीग जाने पर अथवा धूल से पंखों के भर जाने पर फड़फड़ाता है। वह पानी के भार से वजनी बने परों को झटक कर निर्भार कर देता है और फिर चल पड़ता है अनन्त आकाश की ओर। पक्षी एक देश से दूसरे देश का भ्रमण करता है। विभिन्न प्रान्तों में विचरण करता है। आता है, कुछ दिन रहता है फिर फुर्र हो जाता है। कई पक्षी कई देशों में एक निश्चित ऋतु में आते हैं। उस प्रदेश में निवास करते हैं और जलवायु परिवर्तन के पश्चात् पुन: लौट जाते हैं। साइबेरियन पक्षी इसका एक उदाहरण है।

पक्षी अपना घर किसी खास उद्देश्य से ही बनाता है। जहाँ बनाता है वहाँ कुछ दिन प्रयोजन पूर्ण होने तक निवास करता है और... पक्षी कहीं भी अपने चिन्ह नहीं छोड़ता। आता है, टिकता है, आराम करता है, गीत गाता है, नृत्य करता है, आनन्द लेता है, आनन्द देता है, अपना मीठापन पूरे वातावरण में बिखेरता है और फिर एकाकी... पक्षी को सभी अपना मानने लगते हैं। उससे दोस्ती बना लेते हैं, निकटता स्थापित कर लेते हैं। उससे बतियाते हैं, उसे दाना डालते हैं। उसे देख-देखकर मचल उठते हैं, पर पक्षी अपनी ही धुन में, लय में दाना चुगता है।

भोर पक्षियों से होती है। पौ पक्षियों से फटती है। बगीचे का संगीत पक्षी है। नदियों का सौंदर्य पक्षी है। झरनों की झनकार पक्षी है। वनों का सरगम पक्षी है। पहाड़ों का गुंजन पक्षी है।

सावन का नृत्य पक्षी है। भादवा का आनन्द पक्षी है। प्रकृति की रौनक पक्षी है। अतिथियों का बोध देते हैं पक्षी। कार्य का शकुन देते हैं पक्षी। सफलता का पूर्वानुमान, मिलन का पूर्वाभास, खतरों का संकेत और यहां तक कि एक देश से दूसरे देश तक अपनों का संदेश भेजने का मधुर कर्त्तव्य करते हैं पक्षी। अपनों को बेगाना होने से बचाने का कार्य अर्थात् अपनों को अपने रूप में बनाए रखने में पक्षी सदियों से मुख्य भूमिका निभा रहा है। और तो और रामायण की प्रेरणा है पक्षी। गरुड़ पुराण का वक्ता है पक्षी। धन्वंतरि का सहायक है पक्षी। सीता माता की खबर राम तक पहुँचाने वाला है पक्षी। ये है पक्षी का वृत्त।

जनमानस से इतना सम्बद्ध, इतना जुड़ाव, इतना नैकट्य, इतनी आत्मीयता, फिर भी दो पंखों के साथ रहने वाला परिंदा अकेला का अकेला ही है। अनन्त आकाश एवं असीम धरती पर अपनी कोई भी पहचान छोड़े बिना वह तिरोहित हो जाता है। आता है चला जाता है। क्षण में यहाँ, क्षण में वहाँ। इतनी गति, इतनी तीव्रता, इतनी फुर्ती। यह सब देखकर न मालूम कितनों ने प्रेरणा पाई है। न जाने कितने ऋषि बन गये। न जाने कितनों ने खो गये को पा लिया। न जाने कितने आनन्द मग्न बन गये। न जाने कितनों ने जीवन का खोया संगीत पा लिया। न मालूम कितने गीत, न मालूम कितनी कविताएँ, कितनी कहानियाँ, कितने संस्मरण, कितने निबंध, कितने लेख और कितनी पुस्तकें पक्षी की परिक्रमा करती नजर आती हैं।

पर इन सबसे अलग पक्षी अपने आप में अलमस्त है। उसे शायद ही पता होगा कि मुझे भी गीतों में गाया जाता है, कविता में गूंथा जाता है, कहानियों में सुना जाता है। निबंधों में बांधा जाता है। मुझ पर भी शोध ग्रंथ लिखे जाते हैं, पर वह बेखबर अपनी मस्ती में आनन्द मग्न है। क्यों ? क्योंकि वह एकाकीपन को साध रहा है। क्योंकि वह निस्संग बना हुआ है। क्योंकि वह निरकांक्ष बन स्वयं में ही लीन है। पक्षी को देखकर ही शायद रविन्द्रनाथ टैगोर ने एकला चलो रे गाया होगा।

यह पक्षी हमें संसार के स्वरूप का बोध करा रहा है और एकत्व की

साधना हेतु प्रेरित कर रहा है। जीव अकेला जन्म लेता है। जब उसने पहली श्वास, पहला प्रकंपन, पहली धड़कन जानी तब वह अकेला था। कोई भी उसका संगी उस पहले स्पंदन में नहीं था। पहला स्पर्श उसे माँ का हुआ, पर उसे कोई परिज्ञान नहीं है कि ये स्पर्श किसका है। अभी वह बेरंग, निपट, निर्बंध और निर्बोध है। उस पहली अनुभूति के बाद वह अपनी समझ को विकसित करता है। शनैः-शनैः वह रोज घटने वाली घटनाओं, अनुभवों, दृश्यों से अपने अनुभवों में इजाफा करता है। यह क्रम ताउम्र चलता रहता है। इन अनुभवों के माध्यम से वह संबंध को बांधने लगता है। वह भी अपनेपन व परायेपन की धाराओं में बहने लगता है। उसे भी प्रेम व द्वेष की भेद रेखा समझ में आने लगती है। वह भी अपने को एकत्व से अनेकत्व में ले आने में सफल हो जाता है।

अब प्रश्न ये है कि ये अपना-पराया, तेरा-मेरा, प्रेम-द्वेष, वफा-बेवफा ये सारा द्वैत क्या है? क्यों ये अनेकता बनी? क्या वास्तविकता है इनमें? इनके उत्तर में यही समझ में आता है कि ये एक मात्र हमारी अवधारणा है जिसके कारण हम स्वकीय अनुभवों को दूसरे पर आरोपित कर देते हैं और तदनुरूप निज वर्तन बना लेते हैं। एक जीव जब जन्मा था, तब वह एकत्व में ही था। उसके बाद उसने एक संसार का निर्माण कर लिया। उसने अपनी एक नई दुनिया की संरचना प्रारंभ कर दी। उसका एक अपना नजरिया, सोच, दृष्टि, अवलोकन, आकलन धीरे-धीरे विकसित होने लगा। परन्तु जैसे ही पराये से अनुबंध में वृद्धि होने लगती है वह अपने को द्वैत की दृष्टि से देखने लग जाता है। उसे दूसरों का सुख और दुःख अपना लगने लग जाता है। वह एकत्व की भूमिका का त्याग करने लगता है। वह ये याद ही नहीं रख पाता कि मैं अकेला हूँ।

जैसे पक्षी आया, गाया, खाया, रहा, नाचा, उछला, कूदा, झूमा कुछ भी किया, वह एकाकी ही है, वैसे ही यह जीव रूप, पर्याय, परिवर्तन, सुख-दुःख, लाभ-हानि, संयोग-वियोग, हास्य-रुदन, याचना, प्राप्ति सभी स्वरूपों में अकेला ही है। हजारों की भीड़ में भी उसकी अपनी निजता है।

लाखों मित्र होने पर भी वे उसके सुख-दु:ख को विभाजित (कम) नहीं कर सकते, उसे ले नहीं सकते। उसका सुख और दुख अपना ही है। चक्रवर्ती सनत् ने अपना रोग अकेले भोगा। ब्रह्मदत्त ने अंधत्व एकाकी ही सहा। पद्मावती ने विरह को अकेले ही गुजारा। बलराम ने वियोग अकेले ही झेला। लक्ष्मण नरक में दु:ख पा रहे हैं, वे अकेले ही हैं। श्री कृष्ण अकेले ही मरे, रावण एकाकी नरक में गया, हिटलर के साथ नाजियों ने आत्म हत्या नहीं की, नेहरू जी के साथ पूरे देश को हार्ट अटैक नहीं आया, गांधी के साथ पूरे देश को गोली नहीं लगी, इंदिरा जी के साथ पूरा देश छलनी नहीं हुआ, राजीव जी के साथ पूरे देश के चीथड़े नहीं उड़े, बड़े-बड़े धनी-मानी-ज्ञानी-तपस्वी एकाकी ही अपने पुण्य एवं पाप का भोग भोगते हुए सुखी एवं दु:खी हुए हैं, होते हैं। चाहे जितने मित्र, बन्धु, सगे-संबंधी, संरक्षक, मंत्री, सेनापति, सचिव कुछ भी बना लिए जाएं पर वह अनुभवों के तल पर अकेला ही है। एकाकी ही उसे पीड़ा व आनन्द का आस्वादन करना होता है।

यहाँ तक कि भोगियों की दृष्टि में होने वाले आत्यंतिक सुख, जिसमें दूसरा आपसे परिपूर्ण संलग्न हो जाता है उस समय भी तुम एकाकी ही हो। तब भी तुम्हारी अपनी वेदना, संवेदना और अनुभव है। कोई तुम्हारा चाहे कितना भी निकटस्थ होने का दावा करे, अधिकार जताए, ममत्व दिखाए, पर वह तुम्हारे दु:ख के क्षणों में शरीक नहीं हो सकता। वह ढाढ़स बंधा सकता है, परन्तु जीव को उसका संवेदन तो एकाकी ही करना होगा। नौ भवों तक साथ-साथ रहने वाले नेमी भगवान और राजुल की भी वेदना तो भिन्न ही थी। जन्म-मरण, दु:ख-सुख, लाभ-हानि का अनुभव, नौ भवों तक निरन्तर साथ रहने वालों का भी अपना था, निजत्व था, अपना अनुभव था। पार्श्वनाथ से कमठ ने नव भव तक वैर बांधा तो नरक उसने स्वयं भोगी। गौतम के अनेक भवान्तरों के साथ के बावजूद प्रभु उसे मोक्ष साथ नहीं ले जा सके क्योंकि जीव अकेला आया है और अकेला ही जायेगा। एकत्व के चिन्तन से जीव परम समाधि को प्राप्त करते हैं। नमि राजा, मिथिला के राजभवन में रोगग्रस्त हो शय्या पर पड़े हैं। भयंकर दाह-ज्वर से पीड़ित... राजवैद्य, हकीम

सभी उपस्थित हैं। रानियाँ चन्दन घर्षण कर रही हैं। बावना चंदन पत्थर पर घिसा जा रहा है। उस चंदन की गंध से पूरा प्रासाद मघमघायमान बना हुआ है। सारे उपक्रम नमि को स्वस्थ करने हेतु किये जा रहे हैं। परन्तु नमि... वे पीड़ित होते हैं... कराह रहे हैं... आहें भर रहे हैं... कंकणों के सम्मेलन से होने वाले स्वर के कारण नमि की वेदना बढ़ती जा रही है। चतुर सेवकों ने इसे समझा, फिर एक-एक कंकण रखे गये। नमि को नींद आ गई। निद्रा त्याग के पश्चात् नमि पूछते हैं क्या चंदन घर्षण रुक गया है ? सेवक कहने लगे नहीं राजन्! गतिमान है। नमि ने कहा आवाज क्यों नहीं आ रही है। राजन्! एक से अधिक कंकणों को हटाने के कारण आवाज नहीं आ रही है।

नमि का चिंतन चला। एकत्व पर मनन हुआ। स्वत्व की प्रतीति हुई। बहुत में दुख एक में सुख। बहूनांच सम्मेलने प्राय:आपत्... **'एगो मे सासओ अप्पा'**... की अनुप्रेक्षा होने लगी। **एगोऽहं नत्थि में कोई** पर मंथन चलने लगा। नमि जागृत हो गये, उत्थित हो गये, प्रस्थित हो गये। एकत्व के मार्ग पर गतिमान हो गये। एकत्व का बोध होने पर हम भी कह उठेंगे -

आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय।
या कबहुं या जीव का साथी सगा ना कोय।

जीव अकेला जन्मा है अकेला जाएगा। इस जीव का साथी, सगा कोई नहीं है। कोई भी उसका साथ निभाने वाला नहीं है। कोई भी उसके जीवन में सहारा नहीं बन सकता है।

तुम्हें अपने ही सहारे, अपने ही बूते अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। कितना भी तुम उछलो, कूदो, तांडव करो, परन्तु तुम अकेले आए हो, अकेले हो और अकेले ही जाओगे। जैसे पक्षी आता है, अपनी मधुर ध्वनि से लोगों को लुभाता है। अपनी लीलाएँ करता है। अपने गुंजन से वातावरण को पुलकित, स्पंदित और निनादित कर देता है। पूरे वातावरण को आत्मसात् कर लेता है, परन्तु जब जाता है तब वह एकाकी ही है, अकेला ही है, एक ही है। वैसे ही यह जीव है जो अपने सौ, दो सौ, हजारों-लाखों वर्षों की उम्र में जन्म के साथ ही अपना फैलाव करता जाता है। अपनी उस वय में वह न

मालूम कितने रिश्ते, नाते, संबंध, घनिष्ठता बनाता चला जाता है। अपने जीवन को अन्यों से इतना जोड़ लेता है कि एकत्व का सत्य विस्मृत हो जाता है। उसकी स्मृति से यह बात घर के कचरे को निकाल फेंकने की भाँति फेंकी जाती है और वह द्वैत में जीता चला जाता है। आनन्द मानता चला जाता है और स्वभाव को भुलाता चला जाता है। जब एक दिन उसके प्राणों पर मृत्यु दस्तक देती है, उसकी धड़कनें छिनती हुई मालूम होती हैं, उसकी सांसें दूर जाती हुई प्रतीत होती हैं, तब वह रोता है, बिलखता है, दु:खी होता है। तब उसे प्रतीत होता है कि मैं अकेला ही था। मैंने खामखां ये कारवां बढ़ा लिया। अपनी सांसों में बसा लिया और अन्तत: रोते-बिलखते वह अकेला इस संसार से कूच कर देता है।

प्रभु की देशना हमें जन्म और मृत्यु के अकेलेपन के साथ-साथ जीवन का भी अकेलापन बनाने के लिए बोध दे रही है। हम भी एगोऽहं के नाद से एकत्व का अनुभव करें। एगओ चर की भावना से निज को भावित करें। आत्मविश्वास को बढ़ायें, आत्मविकास में वृद्धि करें...। इससे एकत्व भावना भीतर उतरती चली जाएगी।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

अन्यत्व भावना

परः प्रविष्टः कुरुते विनाशं, लोकोक्तिरेषा न मृषेति मन्ये।
निर्विश्य कर्माणुभिरस्य किं किं, ज्ञानात्मनो नो समपादि कष्टम्।।

'अपने घर में घुसा हुआ दूसरा व्यक्ति विनाश करता है'-यह लोकोक्ति मृषा नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ। कर्मपुद्गल उस ज्ञानमय आत्मा में प्रविष्ट होकर उसे क्या-क्या कष्ट नहीं देते?

- *शान्तसुधारस*

टी.वी. चालू है। चैनल बदलते जा रहे हैं। इन बदलते चैनल्स के बीच अचानक '**आज तक**' समाचार माध्यम खुल गया। सांझ का समय है। सनसनीखेज खबर देखने को मिलती है। आतंकियों ने लोगों पर हमला कर दिया। धुआंधार गोलियाँ चलाई जा रही हैं। लाशों का ढेर लगता जा रहा है।

रंगीन माहौल पर मातम की चादर छाने लगी। रागयुक्त गानों का स्थान चित्कारों ने ले लिया। रुदन फैला हुआ है। भगदड़ मच गई है। हर कोई एक-दूसरे को रौंद रहा है और बचने का प्रयास कर रहा है। खून पसरा पड़ा है। कहीं हाथ पड़ा है, कहीं सिर, कहीं धड़, कहीं आँखें, कहीं अंगुलियाँ। कहीं बच्चे, बूढ़े, जवान, किशोर, युवक-युवतियाँ। सबके वस्त्र अस्त-व्यस्त, इत-उत, इखरे-बिखरे। भयंकर डरावना ओर वीभत्स वातावरण है। दु:ख, रुदन, रौरव, क्रन्दन, भयानकता, करुणा का सर्जन उस दृश्य को देखकर होता है।

वीडियो शूटिंग चल रही है। किसी की शादी की लाइव ब्रॉडकास्टिंग हो रही है। एक बड़े शहर के किसी होटल में शादी का आयोजन रखा गया। आलीशान महल, उसके अन्दर सुन्दर बगीचा, हाथी-घोड़े, ऊँट, पक्षी, पंख आदि की चित्रकारी। बहती हुई नदी, झरना, पहाड़, पेड़-पौधे... दोनों ओर दूधिया रोशनी, मध्य में एक मार्ग जिसके दोनों ओर लाइट के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के पेड़। इतना सब पार करने पर महल की याद दिलाता होटल। पीली रोशनी में नहाया हुआ प्रांगण। रेड कारपेट। मध्य में एक बड़ा सा झूमर। नाना प्रकार के व्यंजन। भोजन, पेय, खाद्य। आदमकद कूलर और लोगों की भीड़। लोग भी देश के रईस।

सामने स्टेज पर एक सुंदर युवक दूल्हे के रूप में सजा अपनी खूबसूरत दुल्हन के साथ सोने के सिंहासन पर बैठा है। उस पर सोने-चाँदी के फूलों की बारिश हो रही है। एक करोड़ का सूट, 50 लाख की घड़ी, दो लाख के जूते, पाँच लाख का ब्रासलेट। इससे भी ज्यादा कीमती आभूषणों को उसकी पत्नी ने धारण कर रखा है। दोनों एक-दूसरे को देखकर मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं। वातावरण में खुशी, आनन्द, प्रफुल्लता का संचार हो रहा है। ये दृश्य भी मैं टी.वी. पर देख रहा हूँ।

इन दोनों दृश्यों को देखते हुए मैं अपनी डाइनिंग टेबल पर बैठा नाश्ता कर रहा हूँ। मुझे चाय का स्वाद आ रहा है। डोसा लजीज लग रहा है। इडली टेस्टी लग रही है। दोनों दृश्यों को एक साथ देखते हुए मेरे मन में कोई भी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हो रही है। कारण ? कारण स्पष्ट है कि मेरे भीतर उन दृश्यों के प्रति मेरेपन का भाव नहीं है। मैं उन सारे दृश्यों को मेरा नहीं मान रहा हूँ। मैं अपने भीतर इस बात से पूर्णत: वाकिफ हूँ कि इन दृश्यों से ज्ञात-अज्ञात रूप में मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् ये कि हम जहाँ-जहाँ वस्तुओं, पदार्थों, व्यक्तियों, घटनाओं, परिस्थितियों से निज को जोड़ते हैं वहाँ-वहाँ हम सुखी या दु:खी होते जाते हैं।

सुख और दु:ख का सीधा कारण मेरेपन का भाव ही है। हम देखें! इस अखिल जगत् में अनगिनत लोग हैं, नाना विध पदार्थ हैं, अनेक घटनाएँ हैं। कोई सात अरब लोग। सबका अपना स्वभाव, अपने शौक, अपनी आदतें, इच्छाएँ, वृत्तियाँ। क्या हम उन सबसे प्रभावित होते हैं। क्या उन सारे लोगों के विचारों, शब्दों, संकेतों, निर्देशों का हम पर कुछ प्रभाव पड़ता है ? नहीं। हमें कुछ नहीं होता। कोई जन्मा होगा, कोई उत्सव मना रहा होगा, किसी पर मातम छाया होगा। कोई हंसी में मशगूल, कोई रुदन में संलग्न। हम उन सभी को देखते हैं। उनके बारे में सुनते हैं, उनकी चर्चा भी करते हैं, पर हमारे मन के तल पर किसी भी प्रकार का कोई गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। ये वर्तमान, इस भव की बात हुई।

हम सम्पूर्ण लोक और अनन्त अतीत की चर्चा करेंगे तो हमें पता

चलेगा कि मैंने कितनों से रिश्ते-नाते, संबंध, प्रेम, राग, अनुराग हर जन्म में किया है। मैं उनका द्वेषी भी बना हूँ। ये सब परिणाम प्रत्येक जीव के प्रति मेरे भीतर इस अनादि अनन्त संसार में बहुत बार हुए हैं। वे आज कहाँ हैं ? वे लोग जो कभी मेरे थे, जिन्हें मैं मेरा मान रहा था, अन्यान्य भव में जिनसे जुड़ा हुआ था, वे लोग आज कहाँ हैं ?

काल रूपी नदी के प्रवाह में वे सब बह गये, ढह गये, मिट गये। उन लोगों की कोई याद भी मेरी स्मृति में नहीं है। उन जन्मों में मैंने उनके लिए न मालूम कितने उपक्रम किये होंगे। न मालूम कितने आंसू बहाए होंगे। न मालूम कितना रुदन किया होगा। न मालूम कितनी संवेदना मेरी रही होगी। न मालूम कितने प्रयत्न मैंने उन लोगों के लिये उन जन्मों में किये होंगे, पर आज! वे काल की गहरी खाई में गिर गये। विस्मृति की ज्वाला में भस्म हो गये, मृत्यु की आंधी उन्हें उड़ा ले गयी। वे सब आज कहाँ हैं जिनके निमित्त मैंने न जाने कितने कर्मों का बंध किया? वे सब यदि आज की घड़ी में मेरे समक्ष आ भी जाएं तो शायद मुझे प्रत्यभिज्ञा न होगी। मैं उन्हें पहचान भी न पाऊँगा कि ये किसी जन्म में मेरे स्वजन, प्रिय, प्रेमी, मित्र रहे थे, जिनके लिए मैं रोया था, पीड़ित था, दु:खी था। जिनके सुख में मैंने सुख और दु:ख में दु:ख का वेदन किया था। जिनसे मेरी सांसें थीं। जिनसे मेरी धड़कन थी। जिनसे मेरा मन रमता था। जिनसे मेरे प्राण टिके थे। वे आज मेरे समक्ष नहीं रहे। वे इस शरीर से संबद्ध थे। शरीर के काल कवलित होने के पश्चात् शरीर से जुड़े वे लोग पीछे छूट गए।

जब वे अनेक भवों के रिश्ते, नाते, संबंधी, स्वजन भी बने नहीं रहे तो इस भव में मेरे द्वारा निर्मित परिवार रूपी महल, उस महल के निर्माण में लगाई गयी व्यक्ति रूपी ईंट और उन ईंटों को चिपकाने के लिए राग, प्रेम रूपी चूना, सीमेंट जिससे वह महल मजबूत बना रहे वे सब प्रयत्न, वे कार्य, क्रिया, अनुष्ठान, चिन्ता, अवसाद, भाग-दौड़, रात्रि जागरण, उनके सुखी जीवन के लिए मेरे द्वारा किये गये सारे प्रयत्न... मैं करता चला जा रहा हूँ। मैं विस्मृत हो चुका हूँ। मैंने भुला दिया। मैंने बिसार दिया कि ये सब अन्य हैं।

मेरे नहीं हैं, पराये हैं। नश्वर हैं, नष्ट होने वाले हैं। क्षणभंगुर हैं, नुमाइश हैं। ये सारे ममत्व की डोरी से बंधे हुए लोग, जिनके कारण मैं पापार्जन में संलग्न हूँ, मेरे नहीं हैं। ये बोध, विश्वास, श्रद्धा, अद्यावधि मेरे भीतर प्रकट नहीं हुई है।

मैं अब भी उन सभी को मेरा मान रहा हूँ। उनमें मैंने निजत्व को थोप दिया। मेरापन बना लिया है, अपनत्व का भाव बन चुका है। मुझे देखना है कि ये सब दृश्य पदार्थ और इस जगत् में होने वाले तमाम लोग जो अपनी चीजों में ममत्व रखते हैं, एक दिन उन्हें छोड़कर चले जाते हैं, बिसार देते हैं। अगर ये पदार्थ वास्तव में उनके ही थे तो वे उन पदार्थों, वस्तुओं को छोड़कर क्यों चले गये? क्यों चक्रवर्ती अपने वैभव को छोड़कर चला जाता है ? क्यों श्रेणिक 52 डूंगरी धन छोड़कर चला गया ? क्यों कोणिक पद्मावती को छोड़कर मर गया ? क्यों शिवाजी महाराज अपने सैकड़ों किले छोड़कर कूच कर गये ? क्यों आमेर के राजा अपने महल को साथ नहीं ले गये ? क्यों कारू का नवाब अपने धन को लिये बिना गुम हो गया? क्यों महाराणा प्रताप का चित्तौड़ उनके बिना आज भी है क्यों? क्यों? आखिर क्यों? क्योंकि जो मेरा है वह छूटता नहीं है और छूटे सो मेरा नहीं। इस सिद्धान्त की कसौटी पर कसने पर हमें बोध होगा कि मेरा ममत्व के बंधन में बंधा रहना कितना उचित है।

मेरा अन्य पदार्थों से, अनन्य भाव, पर पदार्थों में मम भाव कितना वाजिब है? मैं जीव हूँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मेरे गुण हैं। वे आत्मगुण ही मेरे हैं। शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ। शरीर अज्ञ है, मैं ज्ञाता हूँ। शरीर अनित्य है, मैं नित्य हूँ। शरीर अजीव है, मैं जीव हूँ। शरीर क्षणभंगुर है, मैं चिरंतन हूँ। शरीर नाशवान है, मैं अविनाशी हूँ।

जब इतना भेद शरीर और मुझमें है, तो शरीर मेरा कैसे हो सकता है। मैं शरीर कैसे हो सकता हूँ। और जब शरीर भी मेरा नहीं है तो शरीर से सम्बद्ध वस्तुएं तो कतई मेरी नहीं हैं। न वे वस्तुएं मेरी हैं न मैं उन वस्तुओं का हूँ। जब मेरा और वस्तुओं का कोई नाता ही नहीं है तो तज्जन्य राग-द्वेष क्यों? जब **'न सा महं नो वि अहं पितीसे'** की भावना प्रबल बनेगी तब

अन्यत्व भाव गहरा बनेगा। जब अन्यत्व भाव गहरा बनेगा तब वस्तुओं के प्रति होने वाला राग-द्वेष समाप्त हो जाएगा। मेरेपन का भाव राग-द्वेष उत्पन्न करता है, जब वह भाव ही समाप्त हो जाएगा तब राग-द्वेष कहां से आएगा। **'नास्ति मूलो कुतो शाखा'** जब मूल ही नहीं है तो शाखा कहां से आएगी वैसे ही मेरेपन का भाव मूल है और राग-द्वेष शाखा है, इसलिए प्रभु ने राग-द्वेष को जीतने के लिए अन्यत्व भावना भाने की प्रेरणा दी। वह अन्यत्व भली-भाँति स्पष्ट होने पर संसार का सम्यक् बोध जागृत होगा। इस अन्यत्व का बोध होने पर ही गजसुकुमाल ने मस्तक पर अंगारे सह लिये, खंधक ने खाल उतरवा ली, प्रभु महावीर ने कीलें ठुकवा लीं। मेतार्य मुनि ने चमड़ा बंधवा लिया। ये अन्यत्व के गहरे बोध के कारण ही संभव हो पाया। जीव जब शरीर के अन्यत्व की प्रतीति करता है तो ये जितने सम्बन्ध हमने इस भव में निर्मित किये हैं और अत्यधिक गहरा संबंध जो हमारे शरीर से है उसमें कमी आएगी और जब कमी आ जाएगी तब शरीर को होने वाली वेदना का भी अनुभव नहीं होगा, फिर बी.पी. से व्यक्ति व्यथित नहीं होगा। फिर शुगर परेशान नहीं करेगी। फिर माइग्रेन से रोना नहीं पडेग़ा। फिर कैंसर तड़पायेगा नहीं, फिर कोई भी दर्द दु:खी नहीं करेगा। फिर सम्पत्ति का बंटवारा तनाव नहीं लाएगा। फिर कार, मकान, दुकान, पत्नी, बैंक बैलेंस, जमीन कोई भी वस्तु अवसाद का कारण नहीं बनेगी। फिर मन सारे कार्यों को करते हुए उन्हें अन्य मानेगा। मेरा है, यह भाव लुप्त होने लगेगा। समाधि गहरी होती जाएगी। आनन्द फैलता जाएगा। सुख बढ़ता चला जाएगा। मन समता से भर जाएगा। वस्तुओं और व्यक्तियों के कारण सशंक रहने वाला मन सदा प्रफुल्लित बना रहेगा। उनके भी अन्यत्व का बोध होगा। जब शरीर ही अन्य है तो रिश्ते शरीर से ही हैं। शरीर के बिना तो वे हैं ही नहीं, फिर वे मेरे कैसे हुए? वे अन्य हैं, मैं अन्य हूँ तब फिर अपने मुँह से भी

जहाँ देह अपनी नहीं तहां न अपना कोय
घर संपत्ति प्रकट यह, पर है परिजन लोय

का संगान होने लगेगा। **'जे अणण्णदंसी से अणण्णारामी'** का आनन्द तुझे

आत्मसात् हो पाएगा। जैसे-जैसे तत्त्वबोध, आत्मबोध गहरा तथा निर्मल होगा वैसे-वैसे तुझे पदार्थों के अन्यत्व की प्रतीति होने लगेगी। तू भी अनन्य के रस में स्नान करके स्वयं को बाह्य जगत् में घटने वाली घटनाओं से अप्रभावित रख पाएगा। तू भी अपने शुद्ध, निर्मल, निरंजन, निष्कलंक स्वरूप का अनुभव करके अन्य का परित्याग कर अनन्य में रमण करेगा।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

अशुचि भावना

स्नायं स्नायं पुनरपि पुनः स्नान्ति शुद्धाभिरद्भि-
र्वारं वारं बत! मलतनुं चन्दनैरर्चयन्ते।
मूढ़ात्मानो वयमपमलाः प्रीतिमित्याश्रयन्ते,
नो शुद्ध्यन्ते कथमवकरः शक्यते शोद्धुमेवम्?

आश्चर्य है कि जो लाग शुद्धजल से शरीर को मलमल कर बार-बार नहाते हैं, मलिन शरीर को बार-बार चन्दन से अर्चित करते हैं, वे मूढ़ आत्मा वाले लोग मन में खुश हो जाते हैं कि हम मैलविहीन बन गए। वस्तुतः वे शुद्ध नहीं होते। क्या उकरड़े को इस प्रकार शुद्ध किया जा सकता है?

- *शान्तसुधारस*

दृष्टि, कर्मबंधिका एवं निर्जरिका दोनों है। व्यक्ति किसी को भी जब देखता है तब उस देखने से दो प्रकार के परिणमन होते हैं। एक परिणमन रागात्मक होता है एवं दूसरा द्वेषात्मक। ये प्राय: हर दृश्य में होता है। इसलिए व्यक्ति को किसी भी पदार्थ के तह में जाना चाहिए, जिससे वह वस्तु तथ्य को भली-भाँति समझ सके।

थाल सजा हुआ है। विविध प्रकार के पकवान जमाए हुए हैं। रसगुल्ला, रसमलाई, रबड़ी, संदेश, खीर, कतली, राजभोग, चमचम, घेवर, मालपुआ, मावा बाटी, गुलाब जामुन, केसरी भात, बालूसाही, पूड़ी, परांठा, दाल बाटी, इडली, चटनी, मसाला डोसा, बड़ा-सांभर, पूड़ी-छोला ... अनगिनत खाद्य पदार्थ थाली में सजे हुए हैं। एक से एक व्यंजनों के स्टॉल सजे हैं। लजीज, रसदार, पुष्टिकारक, दीप्तिकारक सामग्रियाँ समक्ष रखी हैं। मन की भूख बढ़ाई जा रही है। रुचि न होने पर भी जिनको देखने मात्र से रुचि जाग्रत हो जाए। पर क्या ये सच है ? ये पुग्दल स्वरूप से विचलित...!!!

उम्र 22 साल। भरी जवानी। कद 5 फुट 9 इंच। बदन छरहरा, भरा-भरा। हंसे तो फूल खिले, देखे तो दिन निकले। पलकें उठाए तो जमाना उठ जाए। गौर वर्ण, गुलाबीपन लिए हुए। तीखी नाक-नक्श, गर्दन गोल। हंसते समय गाल पर दिखने वाले डिम्पल, रूप में चौगुनी वृद्धि करने वाले हैं। बाल की राशि सिर पर शोभित हो रही है। हाथ-पैर, कमर मानो एक-एक अवयव जैसे नाप-जोख कर बनाया हो। मनोहारी बिना किसी शृंगार के, बनाव के सहज रूप, सहज सौन्दर्य, सहज निखार, सहज विन्यास, जैसे रूप की मलिका, रूप ही स्वयं मूर्तिमान होकर प्रकट हो गया हो। होठों पर सहज लाली है। हाथों पर महावर है। पैर सहज ही सुकोमलता लिए हुए हैं। अहा! क्या रूप है!

देखने वाला स्वयं की सुध-बुध खो बैठे और देखता ही रह जाए। पर क्या ये सत्य है ? इस व्यक्तित्व को हमने एक दावत में उन लजीज व्यंजनों का आस्वादन करते देखा। ठहाके लग रहे थे, कहकहे चल रहे थे, वाह-वाह हो रही थी। मौज-मस्ती और खुशनुमा वातावरण में भोजन गतिमान था। लाजवाब भोजन मुँह से होते हुए रसास्वादन करते हुए पेट में पहुँच रहा था। क्या मिठाईयाँ, क्या मेवा, क्या मावा, क्या भोजन, क्या पकवान सभी बड़ी लज्जत के साथ खाए जा रहे थे। एक-एक का रस नायाब था और परोसदारी भी तारीफ के काबिल थी। क्या गंध, क्या रस, क्या स्पर्श! सभी मनोज्ञ, मनोरम, रसप्रद!

अचानक खाने में कुछ अनिष्ट पदार्थ आ गया। मुँह में जाते ही घबराहट हुई और पूरा का पूरा खाया जाने वाला वह माल-मसाला उल्टी होकर बाहर पसरा बिखरा और फैल गया। सोचो और चिन्तन करो। अब वह माहौल कैसा नजर आएगा। कुछ क्षण पहले मन को सुखद और आनन्दप्रद करने वाला माहौल एक क्षण में बदल गया।

यही है अशुचि भावना। हमें जो दिख रहा है वस्तुत: वह है नहीं। हम जिसका अनुभव कर रहे हैं सच में वह झूठ है। हम जिसमें मशगूल हैं वह सारी फिजा नुमाइशी, दिखावटी, बनावटी है। दो क्षण का शरीर का बदलाव हमारी सारी रौनक को नेस्तनाबूद कर देगा, मिटा देगा। यह शरीर जो खूबसूरती लिए है, यदि उल्टी और दस्त हो जाय तो उस समय इस शरीर के सामने खड़ा रहना भी मुश्किल है। किसी क्षण यदि प्रकृति परिवर्तन से शरीर को जुकाम लग जाए तो वही शरीर घृणास्पद बन जाएगा। आनन्दमयी शरीर, दु:खदायी बन जाएगा। सुन्दर शरीर, कुरूप हो जाएगा। सुरूप शरीर वीभत्स हो जाएगा।

हम सिर्फ शरीर की अशुचिधर्मिता और रोग धर्मिता पर विचार करेंगे तो शरीर के प्रति होने वाला राग भाव और उससे होने वाले कर्मबन्ध शिथिल होते नजर आएंगे। सम्पूर्ण प्रदेश जगत् हमें सुन्दर प्रतीत होता है और वह सुन्दरता हमें लुभाती है। उस लोभ में हम आसक्ति भाव को बढ़ाते जाते हैं और वह आसक्ति भाव कर्मों का बंध कराने वाला है।

अत: हे जीव! तू इसकी अशुचिता पर चिन्तन कर। जवानी में सुन्दर लगने वाला, बचपन में सलोना लगने वाला वही शरीर बुढ़ापे तक कुरूप हो जाता है। शरीर वही है, परन्तु अपना स्वरूप जो बचपन, युवावस्था में छुपा हुआ था, बुढ़ापे-रोग में उभर गया।

राज-दरबार सजा हुआ है। रत्नों के ढेर, मोती के अंबार, स्वर्ण के पर्वत, चांदी का समन्दर, 14 रत्न, 9 निधियाँ, अष्ट सिद्धि, 32 हजार राजा, रानियां, पद्मावती जैसी नारी रत्न, 350 रसोइया, अंगमर्दक, अंगरक्षक, परिचारक, परिचारिकाएँ, अपार वैभव है। उस वैभव सम्पन्न विलासी वातावरण में दो ब्राह्मण देवता राजसभा में प्रविष्ट होते हैं। उनके प्रविष्ट होने के पूर्व राजा को सूचना मिलती है कि प्रभु आपके दर्शन हेतु विप्रवर पधारे हैं। स्नान से पूर्व एक बार दर्शन पिपासा को शान्त करें। राजा ने कहा- अभी हम स्नानागार में जा रहे हैं। अनन्तर राजसभा में ही दर्शन देंगे। परन्तु अत्याग्रह के चलते नृप ने एक बार नयनों को तृप्ति दी। ... और ये क्या विप्रदेव नर्तन करने लगे। अहो रूपं, अहो रूपं कहने लगे। उनके नयनों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। अद्‌भुत, अलौकिक, श्रुतानुसारी ऐसे शब्द उनके मुख से निस्सरित होने लगे।

राज-राजेश्वर ने पूछा- क्या बात है विप्रदेव! इस प्रश्न के साथ ही उनकी तन्द्रा भग्न हुई। अपने आप में आकर कहने लगे- अहो! हमने जैसा सुना था उससे कई गुना अधिक पाया, देखा, अनुभव किया। राजेश्वर कहने लगे- क्या कह रहे हैं आप ? विप्रदेव कहने लगे कि मैं आपके दैहिक रूप-सौन्दर्य के बारे में चर्चा कर रहा हूँ। एक मन्द स्मित के साथ नराधिप ने कहा कि अभी क्या देखते हो, जब हम राजसभा में आएं तब देखियेगा, तब तृप्ति पाइएगा! अभी तो हमारे स्वरूप का दशांश भी अपने में नहीं है। ये राजा थे भरतखण्ड पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने वाले महाराजाधिराज सनत्‌कुमार चक्रवर्ती।

उड़ते पंक्षियों की भाँति समय पंख लगाए उड़ रहा था और निर्धारित समय पर राजाधिराज का पदार्पण राजसभा में हुआ। पूरे भरत क्षेत्र का वैभव वहाँ समाया हुआ था। स्वर्णों के आसन, चांदी के पादपीठ, रत्नों के झुमके,

देवकृत नक्काशी, देव प्रदत्त सुविधाएँ, देव रक्षित राजसभा, राजसौध रत्नों के फर्श पर सोने की कालीन पर रत्नों के पदत्राण धारण किये। नीलम, माणक, मोती, पन्ना, पुखराज, हीरा, सोना। कोई ऐसी कीमती धातु नहीं, कोई ऐसा कीमती रत्न नहीं जो उस शरीर पर शोभा नहीं पा रहा था। एक लड़, दो लड़, तीन लड़, नौ लड़ के हारों को अपने वक्ष स्थल पर धारण करता हुआ, जैसे पूर्व दिशा में सूर्य अपनी रश्मियों के साथ प्रकट होता है, उसी प्रकार अपने सैनिकों, सामन्तों, अनुचरों के साथ महाराजाधिराज सनत्कुमार राजसभा में गंधहस्ती सी चाल के साथ पधारे और रत्न जड़ित सिंहासन पर अपनी प्राणप्रिया रानी पद्मावती के साथ विराजमान हो गये।

चंवर ढुल रहे हैं, सुगंधित जल की वृष्टि हो रही है। मोती का वर्षण मन्द-मन्द गति से हो रहा है। मधुर राग-रागिनियों द्वारा मनोरंजन, चित्तरंजन, और दु:खभंजन करने का प्रयास किया जा रहा है। नजराने पेश किये जा रहे हैं। राज-दरबार अपने चरम पर चल रहा है। इतने में नराधिप को कुछ स्मरण हो आया। वे अनुचर की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए उसे स्मरण कराते हैं कि देखो, हम स्नान करने जा रहे थे उससे पूर्व दो विप्र देव हमारे दर्शनार्थ आए थे। हमने उन्हें क्षणिक दर्शन दिये और पुन: राजसभा में दर्शन हेतु निमंत्रित किया था, तो हे अनुचर! तुम उन्हें ले आओ ताकि वे ब्राह्मण देव हमारे दर्शन कर अपने नेत्र युगल को तृप्ति दें, आनन्दित होवें। अनुचर राजेश्वर की आज्ञा प्राप्त करके हर्षित होता है और वहाँ से निकलकर जिधर विप्र युगल थे उधर आता है और उन्हें राजाधिराज द्वारा कथित वार्ता को कहता है। विप्रवर हर्षित होकर राजेश्वर के दर्शन हेतु अपने विश्राम स्थल से निकलते हैं। वे उस वैभव को देखकर विस्फरित नयनों से अचम्भित थे। सहसा उनके मुँह में कोई शब्द नहीं आए। वे देखते ही जा रहे थे। उनका मन, वाणी, काया सभी स्तब्ध थे और वे एक-एक कदम राजाधिराज की ओर बढ़ा रहे थे। उनकी एक-एक श्वास आतुर थी। उनकी नजरें चंचल थीं, धड़कनें तीव्र से तीव्रतर थी। दर्शन की उत्कंठा... अभिलाषा... अभिप्सा...

पर ये क्या! जैसे ही वे राजा पर दृष्टिपात करते हैं उनके मुँह से चीख निकल पड़ती है। वे भौचक्के रह जाते हैं। उनकी हालत किंकर्त्तव्यविमूढ़

सी हो जाती है। उनकी इस अप्रत्याशित अवस्था को देखकर राजाधिराज चिंतित हुए, प्रश्नायित हुए और कहने लगे। विप्रवर! क्या बात है ? आप इस तरीके का व्यवहार क्यों कर रहे हैं ? क्या प्रात:काल दृश्य रूप से हमारा अभी का रूप और निखार को प्राप्त नहीं हुआ है ?

उनके इस प्रश्न को सुनकर भी वे ब्रह्मदेव मौन रहे। बार-बार पूछने पर वे राजा को कहने लगे- प्रभु! आप पीकदान मंगवाएं एवं उसमें पीक करके देखें। ऐसा करने पर उसमें बिलबिलाते कीड़ों को देखकर राजा स्तब्ध, अवाक्, अचम्भित, स्तम्भित, मूक, भौचक्का रह गया। राजा के मुँह से चीख निकल पड़ी। अरे! क्या ये वही प्रात:काल वाला शरीर है, जिसके भीतर इतने कम समय में इतना बड़ा परिवर्तन हो गया ! अपने शरीर की अशुचिता और रोगधर्मिता देखकर राजा वैराग्यवासित हो गये।

इस शरीर को हमने न मालूम क्या समझा है, जिसमें मोहित होकर अनेक प्राणी पतित हो गये। जिसमें आसक्त होकर अनेक जीव नरक की यात्रा को प्रस्थित हो गये। ये शरीर जिसको न मालूम कितना संरक्षण, सार-सम्भाल, रखरखाव, प्यार-दुलार हमने दिया है। परन्तु ये है अशुचिमय... ये है मलमय... ये है विष्ठामय... ये है मवादमय... ये है पीपमय... ये है वीभत्स का पर्याय... विद्रूपता का अम्बार... असुन्दरता का पर्वत...

हम चिन्तन करें शरीर के नव द्वारों से निरन्तर अशुचि झर रही है। एक-एक का चिन्तन यदि हम करें तो अशौच मूर्तिमंत हो जाएगा, साक्षात् प्रकट हो जाएगा। एक-एक द्वार यदि प्रवहण शील बन जाए तो हमारी क्या प्रतिक्रिया होगी। तेल, फुलेल, इत्र के संयोग से बारम्बार सुवासित किये जाने वाले इस शरीर पर जिस समय हम मुग्ध होते हैं, यदि उसी वक्त नाक बहने लगे, वमन हो जाए, लार टपकने लग जाए, मूत्र विसर्जित हो जाए, मल प्रवाह होने लगे तो सोचो क्या ये शरीर हमें मुग्ध बना पाएगा। जिस शरीर को तू सुन्दर मान रहा है उस शरीर के सामने क्षणार्ध भी क्या तुम खड़े रह पाओगे ? क्या क्षण मात्र भी रति का अनुभव तुम कर पाओगे ?

नहीं। बचपन से शरीर के जिन अवयवों के प्रति धिक् भाव, हीन भाव और अपवित्र भाव हमें सिखाया गया है, युवा अवस्था में उन्हीं अपवित्र अवयवों में तुम सुख मानते हो, उन्हीं में तुम्हें स्वर्गानुभूति होती है। उनके

बिना सुख की कल्पना तुम्हारे लिए असंभव बन जाती है। इस छलावे में आकर जीव न मालूम कितने भयंकर अकृत्य कर डालता है, उसके मन में कितनी और कैसी बुरी भावनाएं किस-किस के प्रति उत्पन्न होती हैं, वह उसे बयां भी नहीं कर पाएगा। बहन हो, बेटी हो, बहू हो या मार्ग पर चलती कोई अनजान महिला हो हमारा वासना युक्त मन उनके बारे में न जाने क्या-क्या सोच लेता है, हमारी नजरें उन्हें कैसे घूरती हैं, किन-किन अंगों पर हमारी आंखें घूमती हैं ये कहना कठिन है।

आज का किशोर एवं युवा मानस मोबाइल एवं नेट के चक्रव्यूह में जब फंसता है तब उसका कैसा अध: पतन होता है ये बताने की जरूरत नहीं है। पोर्न फिल्म के जाल में फंसे युवा अपने सत्व का नाश करते जाते हैं। उन्हें वे तस्वीरें वे वीडियो देखने में बड़ी गुदगुदी होती है। एक तो कच्ची उम्र और उस में सम्यक् दिशा निर्देश के अभाव में वह भटकता जाता है और भोग्या अभोग्या का भान भी उसे नहीं रहता है।

यौवन की भुल-भुलैया और उसमें ब्लू फिल्म की लत से उसका कोमल मन परिपक्व होने से पहले ही नष्ट होने लगता है। उसमें ब्रह्मचर्य का तेज नष्ट होने लगता है, क्यों? क्योंकि मार्गदर्शन का अभाव, सत्संगत की समाप्ति, यार-दोस्त पिक्चर, पत्र-पत्रिकाएं और पोर्नोग्राफी की भयानक लत...

फिर हमें शिकायत है बच्चे का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा है, उसके अंक कम आ रहे हैं उसका परफार्मेंस कमजोर हो रहा है, प्रदर्शन पिछड़ रहा है, उसके स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। इन सबका क्या कारण है और इन सबसे बचने का क्या उपाय है? इनका कारण अशुचि भावना पर चिन्तन का अभाव है और इन सबसे बचने का उपाय है अशुचि भावना से भावित मन। जब मन अशुचि भावना से भावित होगा तब वह इन प्रलोभनों में लुब्ध नहीं होगा। वह मन को लोलुप नहीं बनाएगा। वह पतंगे की भांति रूप की ज्वाला में स्वयं को भस्म नहीं करेगा। उसका मन इन सब से दूर होने लगेगा। वह व्यसनों (ड्रग्स, बियर) से दूर रहेगा। वह भी विवेकानंद जैसी प्रतिभा को पाएगा। वह भी श्री लाल जी महाराज जैसा सत्वशाली बनेगा। वह भी उदय सागर महाराज जैसा गौरवशाली बनेगा। वह भी मुनियों का आदर्श उपस्थित करेगा। वह भी साध्वियों जैसा शौर्य दर्शा पाएगा। युवती, अंजना, चन्दनबाला,

झाँसी की रानी और पद्मावती जैसी शीलवती बन पाएगी। आवश्यकता है अशुचि भावना को समझने की। उसके अभाव में वर्तमान पीढ़ी की दशा भयंकर पतित होती चली जा रही है।

आप कहेंगे कि ये सब बातें तो एक वैरागी साधु के लिए होती है, आप हमें क्यों समझा रहे हैं तब ज्ञानी जन फरमाते हैं कि नहीं-क्या आप सुखी जीवन जीना नहीं चाहते हैं? क्या आप स्वस्थ नहीं रहना चाहते हैं? क्या आप प्रतिभाशाली नहीं बनना चाहते हैं? यदि चाहते हैं तो उसकी नींव है इंद्रिय संयम, उसकी नींव है ब्रह्मचर्य, उसकी नींव हैं अशुचि भावना।

यदि उससे भावित श्रावक होगा तो वह सुखी बन पाएगा अन्यथा युवा मन गोरी चमड़ी देखकर विचलित होने की कमजोरी से विवाहेत्तर संबंध बनाने लगता है। इससे वैवाहिक जीवन दु:खमय बनता है। विवाह पूर्व संबंध बनाता है, जिससे किशोर एवं युवा मन दूषित होता है। सत्व और बल की हानि होती है और जब युवा ही स्वस्थ नहीं हैं- तो उनकी संतानें स्वस्थ कैसे रह सकती हैं? इसलिए ये सिर्फ साधुओं के लिए ही नहीं बल्कि आबाल वृद्ध के लिए है। इसके लिए हमें उच्चादर्शों का निर्माण करना पड़ेगा। श्रेष्ठ पुरुषों के सानिध्य में रहना पड़ेगा। उससे मन संयमित बनने लगेगा। जीवन में श्रेष्ठ पुरुषों को आदर्श बनाया जायेगा तो जीवन श्रेष्ठ ही बनेगा अन्यथा अशुचि भावना से अभावित मानव नग्न और अर्धनग्न तारिकाओं और चित्रों, वीडियो पोर्न को देखकर पतित बनता जाएगा। इसे कोई रोक नहीं सकता है।

एक मात्र अशुचि भावना ही तृप्ति देने वाली है। एक महिला क्या सौ महिलाएं भी पुरुष को तृप्त नहीं कर सकती। ऐसा ही महिलाओं के लिए भी समझें। अशुचि भावना से भावित मानस इसके यथार्थ को समझेगा, मन को निर्मल बनाएगा तो उसके वचनों की ग्राहकता बढ़ेगी, उसका आचरण आदरणीय बनेगा। वह लोगों के लिए अनुकरणीय बनेगा। ये सारा प्रभाव अशुचि भावना का है और इसका परिणाम मिलेगा, इसी क्षण मिलेगा अभी और यहीं मिलेगा।

क्योंकि इसके घातक परिणाम सभी को भुगतने पड़ते हैं। जब युवा अवस्था में ही सशक्त और सबल नहीं है तब वृद्धावस्था में क्या होगा? पुराने जमाने में 100-100 साल तक व्यक्ति स्वस्थ रहता था उसका एकमात्र

कारण है अशुचि भावना से भावित मन। सोचो शरीर के अशौच भाव पर चिन्तन करो। इस शरीर पर चमड़ी यदि न हो या चमड़ी हटा दी जाए, तब उस ढांचे का क्या रूप तुम्हारे समक्ष होगा। क्या तुम उस समय भी इस शरीर में रमण कर पाओगे?

प्रभु फरमाते हैं- असुइ असुइ संभवं। यह शरीर अशुचि में उत्पन्न हुआ है, अशुचिमय है और अशुचि ही प्रदान करता है। अशुचि का आगार है। ऐसे शरीर में राग भाव रखना बुद्धिमान पुरुषों के लिए अश्रेयकारी है। इस अशुचिमय शरीर में एक चैतन्य देव ही है जो परम शुचिमय है, जो परम पवित्र है। परम निर्लिप्त अवस्था में सदा से था, सदा है और सदा रहेगा। इस हाड़-मांस के पिंजरे में एक मात्र संरक्षणीय यदि कोई है तो वह है चैतन्य, जिसकी पवित्रता से ही इस देह का माहात्म्य बढ़ जाता है। यह देह पूज्य हो जाता है, वंदनीय बन जाता है, अर्चनीय बन जाता है। यह चेतन के पावित्र्य का प्रभाव है जो हमें निर्मलता की श्रेणी में लाता है, नहीं तो शरीर तो अपवित्र ही है। उस शरीर में परम पवित्र चैतन्य की आराधना करना ही बुद्धिमान पुरुषों के लिए कर्त्तव्य है। तप द्वारा इस शरीर में भी अनेकानेक लब्धियाँ, ऋद्धियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, परन्तु उसके लिए सर्वप्रथम शरीर के अशुचिमयता का गहन चिंतन करना होगा। जिससे शरीर पर होने वाले आसक्ति भाव में न्यूनता आएगी और आत्मसाधना में लीन होकर उन ऋद्धियों को प्रकट कर पाएगा।

इस शरीर पर मुग्ध होना समझदारी नहीं है। यह शरीर आज स्वच्छ करने पर कल मलिन हो जाएगा। सुबह सुवासित करने पर सांझ को दुर्गंधित बन जाएगा। प्रात: शृंगारित करने पर रात्रि को मलिन हो जाएगा। ऐसे शरीर को विभिन्न उपक्रमों द्वारा, सुगंधित पदार्थों द्वारा सुवासित करना आगमानुसारिता नहीं है। चैतन्य पर एकाग्र होना एवं उसे संयम से सुवासित करना ही अभीष्ट है। कहा है-

दीपे चाम चादर मढ़ी हाड़ पिंजरा देह।
भीतर या सम जगत में मौर नहीं घिन गेह

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

आस्रव भावना

मनसा वाचा रे! वपुषा चंचला, दुर्जयदुरितभरेण।
उपलिप्यन्ते रे! तत आश्रवजये, यततां कृतमपरेण।।

मन, वचन और शरीर से चंचल बने हुए व्यक्ति दुर्जेय पापसमूह से उपलिप्त होते हैं, अत: तू आस्रव-विजय का प्रयत्न कर। अन्य प्रयत्न से तुझे क्या?

- *शान्तसुधारस*

आश्रव भावना

एक आलीशान महल। सुन्दर राजसी संगमरमर की सफेदी लिए हुए अपनी छटा बिखेर रहा है। वैभव के कारण सीना तान कर खड़ा है। उसका बाहरी भाग चमक रहा है। उसमें अनेक छोटे-बड़े द्वार गवाक्ष, धवल फर्श चमक रहा है। सूरज की किरणों के साथ ही सम्पूर्ण प्रासाद जगमग करने लग जाता है। मनमोहक और मनोरम रात्रि के समय दीपों की जगमगाहट उसके सौन्दर्य में चार चांद लगा देती है। पूर्णिमा की रात में जब चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं के साथ नभ में विराजमान होता है तब उसकी कौमुदी में स्नात वह प्रासाद कुछ अनूठा रूप ले लेता है। दर्शक उसे अपलक निहारते रहते हैं। वे उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। उसकी तारीफ सुनकर राजाधिराज भी फूले नहीं समाते। अपने भाग्य की सराहना करते एवं वैभव के गौरव से भर जाते हैं।

पर्दा गिरता है...

कालान्तर में राजा काल कवलित हो गये। वैभव समाप्त हो गया। राजतंत्र का स्थान लोकतंत्र ने ले लिया। राजा नामधारी रह गये। उनके वैभव सिर्फ किस्सागोई बनकर रह गये। वह जगमगाता-चमचमाता महल शनैः-शनैः उपेक्षित हो गया। उसका रख-रखाव नजर अन्दाज किया जाने लगा। उसके प्रति जो ममत्व था वह उत्तराधिकारियों के मन में नहीं रहा। वे शहर छोड़कर परदेश चले गये। वह प्रासाद अब भी खड़ा है, पर जहाँ चहल-पहल थी, वहाँ नीरवता है। जहाँ उत्सव था, वहाँ मातम है। जहाँ रौनक थी, वहाँ चमगादड़ हैं। जहाँ जय-जयकार की ध्वनियाँ थीं वहाँ उल्लुओं के कर्कश स्वर हैं। जहाँ महफिलें जमती थीं, मजलिसें बैठती थीं वह वीरान है। जो जीवित था उसे मौत ने अपना कवल बना लिया। दीपावलियों से सज्जित वह महल

घोर अंधेरे में डूबा पड़ा है। अपने बुरे वक्त पर एकाकी आँसू बहा रहा है। जो स्वच्छ कांच की भाँति चमकता था उसमें धूल की परत-दर-परत जमती जा रही थी। वह धूल धुसरित हो गया है। उसकी दीवारें मकड़ी के जालों से छुप-सी गयी हैं। उस पर पोता गया रंग उखड़ने लगा है। दरारें पड़ने लगी हैं। शान मिटने लगी। शौकत पुरानी हो गयी। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि वह खुला था और तेज चलने वाली हवाओं से उड़कर रज-कण महल में प्रविष्ट होती गई जिससे महल गन्दा, मटमैला होता गया। संक्षेप में वह महल पूर्ण रूप से उपेक्षित हो गया था।

वैसे ही आत्मा रूपी महल जो निश्चय में पूर्ण शुद्ध है, कभी पूर्ण शुद्ध रही है ऐसा नहीं है परन्तु उसके शुद्ध स्वरूप की जब चर्चा करेंगे तो वह पूर्ण शुद्ध है। सिद्धों के जैसी हमारी आत्मा है। पवित्र, निर्मल, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सम्पूर्ण चराचर जगत् को हस्तामलकवत् जानने देखने में समर्थ यह आत्मा आज दीन, हीन, दु:खी, पीड़ित, त्रस्त, अज्ञानी बनी हुई है। उसकी उस अवस्था का कारण है अज्ञान, जो कि प्रथम आस्रव है। जिसका अपरनाम मिथ्यात्व है। मिथ्यादर्शन के प्रभाव से आत्मा स्वयं का बोध नहीं कर पाता है। जान नहीं पाता, समझ नहीं पाता। दूसरे की बात जाने दें, वह निज को भी नहीं जान पाता।

ऐसा होने का एक मात्र कारण है मिथ्यात्व आस्रव। यह आस्रव जो कि आत्मा रूपी महल के द्वार खुले होने के कारण अन्दर प्रवेश करता है। जब तक द्वार बन्द नहीं करोगे तब तक योग रूपी आंधी के कारण से कर्म रूपी रज, आत्मा रूपी महल में आती रहेगी, आस्रवित होती रहेगी और सबसे बड़ा दरवाजा, खिड़की या आगमन का माध्यम है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व के कारण जीव की समझ विपरीत हो जाती है, दृष्टि में भेद पड़ जाता है, जिससे वह धूल को भी रत्न मानने लगता है। पंक को भी पवित्र मानने लगता है। दृष्टि समझ में भेद पड़ने के प्रभाव से आचरण की शुद्धि कदापि नहीं हो सकती। मिथ्यात्व आस्रव ने आत्मा को अज्ञान के अन्धकार में पकड़ रखा है। वह कुछ भी नहीं देख पा रहा है। आत्मनिधि उसके समक्ष बिखरी है, परन्तु मिथ्यात्व की पट्टिका के कारण वह उसे जान नहीं पा रहा है। अशुद्धाचरण एवं

अशुभ क्रियाओं में उलझा जीव मोक्ष मार्ग से दूर दूरातिदूर हो जाता है।

हे आत्मन् ! तुझे यदि सुख की इच्छा है तो तू सर्वप्रथम मिथ्यात्व के स्वरूप को समझ। जैसे किसी व्यक्ति को 1 करोड़ रुपया देना है और उसने 99 लाख 99 हजार 999 रुपये दे दिये। 1 रुपया बाकी है। ये एक रुपया प्रमाण अन्य आस्रव है। सिर्फ एक मिथ्यात्व का बोझ इतना अधिक है। ऐसी भारी अवस्था मिथ्यात्व की है। ये बड़े आश्चर्य की बात है कि जीव ही जीव को (निज को) नहीं जानता है और न जानने की रुचि है। जीव सबसे अधिक भार मिथ्यात्व के कारण से अनुभव करता है।

इसके बाद दूसरे क्रम में आता है अव्रत-अविरति अर्थात् इसके प्रभाव से जीव त्याग, प्रतिज्ञा, अनुशासन से कतराता है, उससे भागता है। उसकी ओर जरा भी उत्सुक नहीं होता। अव्रती प्राणी आस्रव के शिकंजे में फंसता जाता है। जैसे आवारा कुत्ते जहरीली रोटी के चंगुल में फंसकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं वैसे ही अविरति आत्मा प्राणातिपात आदि क्रियाओं से बच नहीं पाती। वह हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह रूप पंचाव्रत में बंधता चला जाता है। अव्रती प्राणी हिंसा आदि में रत रहता है। उससे बचने का उपाय नहीं ढूंढ़ता। जीवों की हिंसा के लिए अथवा आजीविका के लिए वह महाआरंभ एवं महापरिग्रह कर्मादान आदि से भी नहीं चूकता है।

उसे मिथ्यात्व के प्रभाव से सद्गुरु, सद्धर्म में श्रद्धा और उसकी जानकारी भी नहीं मिलती। उसके अभाव में वह न मालूम कितने जीवों का घमासान, हिंसक अन्त करता है। साथ ही साथ असत्य में भी वह गहरा से गहरा डूबता जाता है। अपने कार्य की सिद्धि के लिए झूठ-सांच, कूड़ा लेख, कूड़ा प्रचार, यलो जर्नलिज्म किसी से वह नहीं हिचकता और असदाचरण करता चला जाता है। चोरी भी उसके जीवन में प्रवेश कर लेती है। किसी की छोटी वस्तु उठाने से लेकर बड़ी-बड़ी टैक्स चोरी, कालाधन, सरकारी आंकड़ों में हेराफेरी करना उसके लिए बहुत ही आसान होता है।

मैथुन में वह बहुत ही रुचिशील होता है। नित्य नई लड़कियाँ, नित्य नये मॉडल्स, अभिनेत्रियाँ, तारिकाएँ, पर स्त्री, अनगिनत माध्यमों से अनगिनत अनैतिक एवं विवाहेत्तर संबंध बनाने में भी वह नहीं हिचकता। यह सब करते

हुये उसे किसी प्रकार की ग्लानि का अनुभव नहीं होता। प्रत्युत वह निज को ऐसा करते हुए या करने का मौका मिलने पर परम सौभाग्यशाली एवं संसार का सर्वाधिक सुखी मनुष्य समझता है। मैथुन उसके रग-रग, रोम-रोम में बहता है, बसा है, बैठा है। रसासक्ति के कारण मछुआरे द्वारा प्रक्षिप्त मांस खण्ड में अति आसक्त होकर वह मत्स्य शस्त्र से बींधा जाता है और चूल्हे पर अग्नि में पकाया जाता हुआ तड़प-तड़प कर मर जाता है।

स्पर्श का सुख तो अलग ही स्पंदन उत्पन्न करता है। इस सुख से प्रेरित होकर भैंसा गर्मी से घबराकर शीतल जलयुक्त तालाब में उतर जाता है। उस पानी के शीतल स्पर्श में मुग्ध-आसक्त हो जाता है और उसी तालाब में चलता-चलता मध्य गहरे में पहुँच जाता है जहां उसे मगरमच्छ अपना भक्ष्य बना लेता है। उसकी टांगों को अपने तीक्ष्ण जबड़े से पकड़ लेता है। वह छटपटाता है, दु:खी होता है और बचने का प्रयत्न करता है, परन्तु कालरूपी मकर से बच पाने का कोई उपाय उस महिष को नहीं दिखता। फिर वह अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है। जिस प्रकार हमने भिन्न-भिन्न प्राणियों के स्वरूप एवं रसासक्ति के कारण मृत्यु जानी, वैसे ही हमें यह देखना है कि हम भी श्रोतेन्द्रिय में आसक्त हैं। मीठे-मीठे शब्द और मधुर संगीत हमें आसक्त करते हैं। विभिन्न दर्शनीय स्थल, भिन्न-भिन्न सुन्दर पदार्थों को देखकर हम उसमें नेत्रों को आसक्त बना लेते हैं। भाँति-भाँति के तेल, फुलेल, इत्र हमें घ्राणासक्त बनाते हैं। विविध व्यंजन, खाद्य पदार्थ, पेय पदार्थ हमारी रसना को गृद्ध बनाते हैं। स्पर्श का सुख, कोमल मखमली शय्या, नरम-नरम गद्दे-तकिये और उसके साथ ए.सी., कूलर की हवा, सर्दियों में कम्बल, रजाइयाँ और साथ ही साथ रमणीय सुन्दर सजी-धजी मादक स्त्री। हम स्पर्श सुख में आसक्त ऐसे होते हैं कि निकलने का कोई चान्स ही नहीं है। हमें देखना ये है कि जब एक विषय में आसक्त जीव भी इतना पतित हो जाता है तो जो अनेकानेक विषयों में लुब्ध है तथा उसके साथ परिग्रह में भी उसकी गहरी मूर्च्छा है, धन में उसका मन है, धन में उसके प्राण हैं, धन उसका जीवन है, धन का परिग्रहण उसके आनन्द में अन्तहीन वृद्धि करता है तो उसकी क्या दशा बनेगी। परिग्रह का अर्थ है मूर्च्छाभाव। गहरी से गहरी

मूर्च्छा भावना उसकी वस्तुओं, व्यक्तियों एवं पदार्थों के प्रति होती है और इन सारे कार्यों को आस्रव का कारण नहीं मानता हुआ यह जीव परमानंद में रमता है।

जब जीव हिंसादि पंचास्रवों में अत्यन्त गृद्ध एवं आसक्त हो जाता है तब उस अवस्था में वह पंच इन्द्रियों के भोगों को भोगने रूप प्रमाद में रमण करता है। अत्यन्त खेद है कि प्राणी परिणाम में विरस एवं दु:खरूप विषय क्रीड़ाओं के रस में लुब्ध होकर विविध वेदनाओं को पाता है। वह अहर्निश पंचेन्द्रियों से संबद्ध भोगों में रमण करता हुआ, लुब्ध होता हुआ अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठता है। श्रोतेन्द्रिय के वश होता हुआ हरिण जाल में फंस जाता है। उसका चर्म उधेड़ा जाता है। वह तड़प-तड़प कर मृत्यु को प्राप्त होता है। चक्षु के रस में आसक्त पतंगा अपने को ज्योति के आकर्षण से बचा नहीं पाता एवं लौ पर झंपापात करता हुआ वह सुखद मानने वाली दीपशिखा को, सुख शय्या को मृत्यु शय्या बना लेता है और जल कर मर जाता है।

घ्राण के आगोश में बंधा सर्प बांबी से बाहर निकल सुगंध की ओर खिंचा चला जाता है और अपने को मृत्यु के अंक में सौंप देता है। रसासक्त मत्स्य जो कि सागर की अनन्त जलराशि में उन्मुक्त रमण करने वाला प्राणी, मन चाहा भ्रमण करने वाला प्राणी, लहरों के साथ मस्त प्राणी, अपने सौन्दर्य से सागर की शोभा बढ़ाने वाला प्राणी भी जब स्वयं को हानि पहुँचाता है फिर हम तो पांचों में आसक्त हैं। उससे कितना शक्तियों का क्षरण होता है, कितना कर्मों का आस्रव होता है, कितने कर्मों का आगमन एवं बन्धन होता है।

हे आत्मन्! पंच विषयों में आसक्ति एवं उसके परिणामों पर विचार कर। इस पर विचार करना जरूरी है क्योंकि इसी के कारण कषायों की उत्पत्ति होती है। नित्य तू कषायों की अग्नि में जलता रहता है। वस्तुओं की प्राप्ति नहीं होने पर तू क्रोध की ज्वाला में जलने लगता है और मिलने पर मान के हस्ती पर आरूढ़ हो जाता है। नहीं मिलने पर विविध मायाजाल करता है और मिलने पर तेरा लोभ बढ़ता जाता है। तू चिन्तन कर कि कषाय कितने भयंकर हैं और तू निरन्तर कषायों के भीतर रमण करता है। ये कषाय

ही आस्रवों के मुख्य कारण हैं। कषाय सहित आत्मा को अधिक आस्रव होता है। इसलिए तू चार कषायों के स्वरूप को आत्मसात् कर, उस पर चिन्तन-मनन कर, गहन मीमांसा कर। उससे तू आस्रवों के स्वरूप को गहराई से समझ पाएगा।

इन कषायों को बल देने वाले होते हैं योग मन, वचन और काया, जिनकी स्थिरता पर आस्रव की वृद्धि और हानि निर्भर है। योग और कषाय की युति होने पर सांपरायिक क्रिया का बंध होता है। काया योग से सबसे कम कर्मों का बंध होता है और वही जीव जब वचन योग से युक्त होता है तब और अधिक कर्मों का बंध करता है। मन योग की संबद्ध अवस्था तो कर्मों के आस्रवों को असंख्यात गुणा बढ़ा देती है।

हे जीव ! तू मन, वचन, काया के स्वरूप का चिन्तन करते हुए आस्रवों को जान-समझ। योग रूपी हवा से कर्म रज उड़कर आत्मा में प्रविष्ट होते हैं। परन्तु संयमी पुरुषों के मन, वचन, काया के योग शुभ होते हैं और वे शुभ कर्मों का आस्रव करते हैं, जिससे तुझे देवादि गति, सुख भोग सामग्री एवं अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति होती है। यह तुम्हारे मोक्ष सुख में रुकावट उत्पन्न करती है, जो कि सोने की बेड़ियों की माफिक है, बंधन है। संसार में रोके रखने वाला है। जिस प्रकार नालों के अवरुद्धन के बिना तालाब को सुखाने का कोई उपाय नहीं है। जैसे द्वारों को बन्द किये बिना महल को स्वच्छ रखने का कोई उपाय नहीं है। नाले हैं तो पानी है, द्वार खुले हैं तो रज कण आने वाला है, वैसे ही आस्रव हैं तो आत्मा में कर्मों का आगमन है। जब तक आस्रव रहेगा तब तक कितना भी सुकृत करें, उसकी अवस्था हस्ती स्नान सदृश ही रहती है। स्नान करके फिर अपनी देह पर मिट्टी-कीचड़ डालना। वैसे ही आस्रव आत्मा में निरन्तर द्रुत गति से आ रहे हैं।

इस तथ्य को जिनवाणी से समझें। बिना आस्रव का स्वरूप समझे मोक्ष की कल्पना नहीं की जा सकती, परम सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, सर्वकर्म क्षय नहीं हो सकते। इसलिए हे आत्मन्! तू आस्रवों के स्वरूप को समझ-जान। उससे होने वाले भार एवं हानि को जानेगा तो तेरे मुँह से भी

निकलेगा-

जगवासी घूमे सदा मोह नींद के जोर।
सब लूटे नहीं दीसता कर्म चोर चहुं ओर।।

हे चैतन्य देव! तू आस्रव के स्वरूप को जान, समझ। उन्हें देख कि किस प्रकार आत्मा में प्रति समय कर्मों का आस्रव, आगमन हो रहा है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते, यहाँ तक कि एक भव से दूसरे भव में जाते हुए विग्रह गति में भी कर्मों का आस्रव निरन्तर बना रहता है। तू शुभ भावों में रहेगा तब शुभ कर्मों (पुण्य) का आस्रव होगा। जब जीव अशुभ क्रिया एवं भावों में रहता है तब अशुभ कर्मों (पाप) का आस्रव बना रहता है। तू आस्रव के स्वरूप एवं परिणाम को जान, आस्रव के दुष्प्रभाव को जान कि किस प्रकार ज्ञानावरणीय, मोहनीय आदि कर्मों के आगमन से जीव के ज्ञान पर आवरण छा जाता है। दर्शन ढक जाता है। साता बाधक हो जाती है। आत्म स्वरूप का बोध नहीं हो पाता। चार गति में परिभ्रमण एवं संचिट्ठण नाना विध संस्थान, संहनन, रूप, वर्ण आदि की प्राप्ति उच्च नीच गोत्र का शब्द सम्बोधन, दान, लाभ, भोग, उपभोग में बाधा, अन्तराय इन कर्मों के आस्रव से होती है। इससे जीव परम सुखी अवस्था, सर्वज्ञावस्था सर्वशक्ति सम्पन्न अवस्था का अनुभव नहीं कर पाता है। वह दीन-हीन अवस्था में बना रहता है। इसलिए जानें कि आस्रव भयंकर है। भयंकर इसलिए है कि दु:खदायी है। ऐसे दु:खदायी आस्रवों से सावधान !

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

संवर भावना

एवं रुद्धेष्वमलहृदयैराश्रवेष्वाप्तवाक्य-
श्रद्धाचचत्सितपटपटु: सुप्रतिष्ठानशाली।
शुद्धैर्योगैर्जवनपवनै: प्रेरितो जीवपोत:,
स्रोतस्तीर्त्वा भवजलनिधेर्याति निर्वाणपुर्य्याम्।।

निर्मलचित्त से आस्रवों का निरोध करने पर यह जीवरूपी पोत, जो आप्तवचनों की श्रद्धा से मंडित श्वेत पताका से सुन्दर और शुभभावरूपी आधार-स्तम्भ से समन्वित है, शुद्धयोगरूपी वेगवान् पवन से प्रेरित होकर भव-समुद्र के स्रोत को पारकर शिवपुरी पहुंच जाता है।

-शान्तसुधारस

बादल उमड़-घुमड़कर आए हुए हैं। आसमान में काली घटा छाई है। तेज हवा चल रही है। बिजली चमक रही है तथा प्रचंड ध्वनि करती हुई कड़क भी रही है। प्रकृति रुष्टमान प्रतीत हो रही है। वातावरण डरावना बना हुआ है। रात का समय है। सांय-सांय करती हवा सबको डराने का प्रयास कर रही है। तेज मूसलाधार बारिश हो रही है। ओले गिर रहे हैं। बारिश के कारण रात्रि की भयावहता और बढ़ती जा रही है।

दिल को कंपा देने वाले इस दृश्य में यदि कोई व्यक्ति खुले आसमान के नीचे हो तो उसकी हालत क्या होगी ? एक दूसरा व्यक्ति सफर कर रहा है। सोचो! वो कैसे सफर कर रहा होगा ? सोचो, उसे एक-एक कदम बढ़ाने में कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा होगा? उस परिस्थिति में पहले व्यक्ति को भव्य इमारत नजर आ जाए तो खुले आसमान के नीचे खड़ा आदमी बहुत खुश हो जाएगा क्योंकि वह भीगने से बच जाएगा और दूसरे आदमी को मर्सीडिज जैसी महंगी और पूर्ण सुरक्षित कार मिल जाए तो उसका सफर कैसा होगा ? वह किस तरह अपनी मंजिल को निराकुलता से प्राप्त कर लेगा। कैसे वह सुरक्षित अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँच जाएगा। बस इस दृष्टान्त को समझ लिया तो संवर समझ लिया।

यह संसार जिसे आगमिक भाषा में लोक कहा गया है, जिसमें वर्गणाएँ (पुग्दलों के समूह) ठसाठस भरी हैं। आत्मा चाहे लोक के किसी भी निष्कुट में पहुँच जाए, कैसी भी अवस्था में रहे, जब तक वह 14वें गुणस्थान में नहीं पहुँचता तब तक वे वर्गणाएँ आत्मा में निरन्तर प्रविष्ट हो रही हैं। योग की हवा से, कर्मों का आगमन आत्मा में होता है तथा कषायों की चिकनाई

से वे कर्म आत्मा से चिपक जाते हैं, बंध जाते हैं। हम इसे ऐसे समझें कि अष्ट कर्मों की मूसलाधार वर्षा निरन्तर आत्मा में हो रही है। अनन्तानंत कर्म एक बार आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं, जो आत्मा को भारी बनाते हैं और मोक्ष लक्षी प्राणी के लिए ये सबसे बड़ी बाधा है। ऐसे में वह सफर कैसे करे ? कैसे अपने गन्तव्य तक पहुँचे ? इसके लिए प्रभु ने संवर का निर्देश दिया है।

यह उपदेश एक मात्र जिनेश्वर भगवंतों का ही है। लोक में अनेकानेक धर्म होंगे, धर्म प्रवर्तक होंगे, धर्म व्याख्याता एवं संस्थापक होंगे, लेकिन संवर की अद्‌भुत परिभाषा केवल तीर्थंकर भगवंतों ने ही दी है। इस बारे में जैन धर्म अद्वितीय है। उसका अस्तित्व अनुपम है और उसकी आराधना परम सुखदायक है। मोक्ष प्रदायक है। उसकी स्थापना तीर्थंकर भगवंतों ने ही की है। जैसे मर्सीडिज कार सफर तय करने में सहायक है। उसमें बैठने पर यात्री पर पानी की बौछार नहीं पड़ेगी। वह गीला नहीं होगा। वह भीगेगा नहीं। वैसे ही संवर रूपी कार में बैठने पर जीव में कर्मों का आस्रव रुक जाएगा। कर्मों का आगमन बन्द हो जाएगा। जैसे छिद्र वाली नौका चालक सहित उसमें सवार सभी को डुबा सकती है और निश्छिद्र नौका निराबाध रूप से तीर तक पहुँचा देती है, वैसे ही संसार रूपी समुद्र में संवर के प्रभाव से निश्छिद्र बनी हुई आत्म नौका मोक्ष रूपी तीर तक पहुँच जाएगी।

इसलिए जीव को संवर का आचरण करना चाहिए। जया संवरमुक्कट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं, भगवान ने संवर को ही अनुत्तर धर्म कहा है। जगत् में संवर सर्वश्रेष्ठ है। **"जो सहस्सं सहस्साणं मासे मासे गवं दए। तस्सावि संजमो सेओ अदिंतस्स वि किंचणं।"** एक व्यक्ति नित्य प्रति सोने के कंगूरे एवं आभूषणों से सजी दुधारू गायों को दान देता है। ऐसा वह महीनों तक करता है। एक दूसरा व्यक्ति संवर की आराधना करता है, संयम को स्वीकार करता है तो वह संयमी श्रेष्ठ है, संवर श्रेष्ठ है। एक तरफ लाख-लाख गायों का दान और दूसरी तरफ संयम की आराधना, तो प्रभु फरमाते हैं कि संयम अनुत्तर है, श्रेष्ठ है। उससे ज्यादा उत्तम कार्य जगत् में दूसरा कोई नहीं है। इस

चर्चा से संवर के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है कि संयम का प्रभाव और महत्त्व अत्यधिक है। क्यों ? क्योंकि संयम में ही जीवों की यतना है। संयम में ही प्राणियों की दया है। संयम में ही भूतों पर अनुकंपा है और संयम में ही सत्वों को अभयदान है। ये कार्य एक मात्र संयम से ही संभव है। एक मात्र संयमी पुरुष ही यावज्जीवन जीवों के घात का तीन करण तीन योग से त्याग करता है।

ज्ञानीजन फरमाते हैं कि एक विरत पुरुष किसी उद्यान में जाता है। एक अविरत पुरुष भी उसी उद्यान में जाता है। विरत पुरुष के उद्यान में जाने पर वहां की वनस्पति के जीव भयभीत नहीं होंगे, वे डर कर कांपेंगे नहीं, वे व्याकुल नहीं होंगे। वे शांत रहेंगे। दूसरी ओर अविरत पुरुष जिसे छेदन-भेदन का प्रत्याख्यान नहीं है, वह जैसे ही उस वनस्पति के पास पहुंचेगा वे जीव प्रकंपित होंगे। वे जीव भयभीत होंगे। उनको किलामना होगी। पहले व्यक्ति से जीवों को कोई दु:ख नहीं हुआ, जीव शांत हैं। भगवान ने फरमाया है कि संवर के कारण जीव शांत हैं। दूसरी तरफ आस्रव के कारण जीव अशांत हैं। अविरति के कारण जीव अशांत है। विरति के कारण जीव शांत है। भगवान ने यह हजारों साल पहले फरमाया है जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी माना है।

एक तालाब पानी से पूर्ण है। यदि किसी व्यक्ति को वह तालाब जो कि पानी से भरा है, जिसमें अनेक नहरें, नाले आकर उसके जलस्तर को बढ़ा रहे हैं अथवा बनाए रख रहे हैं, उसे खाली करना है तो उसके लिए प्रथम कार्य उसमें गिरने वाले नालों को बन्द करना होगा, तभी उसे सुखाया जा सकता है। वैसे ही आत्मा रूपी तालाब में कर्म रूपी जल भरा है। वह निरन्तर नये कर्म रूप नालों के आने से अपने जल स्तर को बढ़ा रहा है। यदि किसी की इच्छा उसे कर्म रूप जल से रहित बनाने की है तो पहला कार्य उसका यह होगा कि नालों को बन्द करे।

नालों, नहरों को बन्द करना ही संवर है। कर्म रूपी जल को आने से रोकने का कार्य संवर का है। संवर के द्वारा आत्मा में नवीन कर्मों का आगमन

रुक जाएगा। जब नवीन रुकेगा तब पूर्व स्थित जल को सुखाने का कार्य होगा। इसके लिए प्रथम कार्य यह है कि हम आगमनशील जल को संवर से रोकें। संवर से क्षमता एवं शक्ति का विकास होता है। उससे आत्मशुद्धि का क्षरण रुक जाता है एवं मन व इन्द्रियों द्वारा शक्तियों का संचय करना ही उद्देश्य बन जाता है। इसके लिए हमें अपनी सारी प्रवृत्तियों पर ध्यान देना होता है। प्रत्येक कार्य में यतना को प्राथमिकता देनी होती है। किया जाने वाला प्रत्येक कार्य यतना पूर्वक हो, संयम पूर्वक हो, सावधानी पूर्वक हो, वही आस्रवों को रोकने वाला बनेगा।

प्रभु फरमाते हैं - हत्थसंजए पाय संजए वायसंजए कि भिक्षु के हाथों में संयम आए, पैरों में संयम आए, वाणी में संयम आए। यहाँ तक कि इन्द्रियों एवं जीवन में संयम आए, यतना आए तभी वह पूर्ण संवर कर पाएगा। तभी वह आगम्यमान कर्म वर्गणाओं को पूर्ण रोक पाएगा। संवर अर्थात कर्मों के लिए 'नो इन्ट्री' का बोर्ड। मनीषियों ने जगत् के जीवों को बोध देने के लिए द्रव्य संवर एवं भाव संवर की समझ दी है। उसी प्रकार देश संवर एवं सर्व संवर का भी शिक्षण दिया है। देश संवर अर्थात् एक, दो, तीन आस्रवों को रोकना एवं सर्व संवर अर्थात् सम्पूर्ण आस्रवों का निरोध करना। यह अवस्था अयोगिकेवलि गुणस्थान में पाई जाती है, परन्तु 1, 2, 3 संवर वाले जीव अन्य गुण में भी हो सकते हैं।

इन सर्व संवर और देश संवर को द्रव्य और भाव रूप में भी व्याख्यायित किया है कि आस्रव द्वार से कर्म पुग्दलों के आगमन को रोक देना द्रव्य संवर है और संसार की कारणभूत क्रियाओं का ही त्याग कर देना भाव संवर है। हमें संसार की कारणभूत क्रियाओं को समझना होगा कि राग-द्वेष कर्मों के कारणभूत हैं। चार कषाय कर्मों की लता का, वृक्ष का पुन: पुन: सिंचन करते हैं तो राग और द्वेष का त्याग भाव संवर है। ऐसी अवस्था जिसमें वीतरागता है एवं ऐसा मानसिक स्तर जिसमें किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं है, प्रत्युत समत्व अवस्था है, समता है, एकरसता है। हमें समझना है कि क्या क्रिया से आस्रव होता है ? यदि हाँ तो जब हम जगत् के जीवों की

क्रियाएँ देखते हैं और केवली, वीतराग प्रभु की क्रियाएँ भी देखते हैं तो ऊपर से क्रियाओं में कोई भेद नहीं दिखता। सामान्य जीव भी भोजन करता है, केवली भगवान भी करते हैं। सामान्य मनुष्य भी बोलता है, केवली भगवान भी बोलते हैं। सामान्य मनुष्य भी चलता है, केवली भगवान भी चलते हैं। ऊपर की क्रियाओं को देखने पर केवली भगवान और सामान्य मनुष्य में कोई भिन्नता नहीं है, परन्तु कर्मों के आस्रव में भेद है।

क्यों ? क्योंकि वे राग-द्वेष रहित हैं, वे कषाय विजेता हैं। उनका मन किसी भी परिस्थिति में एकरूपता बनाए रखता है, जिससे कि उन्हें कर्मों का आस्रव नहीं होता अर्थात् पूर्ण संवर की अवस्था बन जाती है। सिद्ध भगवान भी इसी जगत् में हैं। वर्गणा संकुल परिक्षेत्र में विराजमान हैं। वे अपने ज्ञान से सर्वलोक को देख सकते हैं और देखते हैं, परन्तु उन अष्ट वर्गणाओं के साथ रहते हुए भी वे उनसे स्पृष्ट नहीं होते। उनसे नहीं बंधते। वे कर्म उनकी आत्मा को बांधने में समर्थ नहीं हैं। क्यों ? क्योंकि उनके पास राग-द्वेष कषाय नहीं है। इसीलिए वे सर्व संवृत्त हैं। ये हमने सर्व संवर को समझने का प्रयत्न किया। अब हम देश संवर के बारे में चर्चा करेंगे। **येन येन उपायेन रुद्ध्यते यो य: आगूदव तस्य तस्य निरोधाय, जस योज्यो मनीषिभि:।।** श्लोक में कहा गया है कि जो-जो आस्रव जिस-जिस उपाय से रोका जा सकता है उसे उस-उस उपाय से रोकने के लिए प्रयत्न करें एवं आस्रवों को रोकने के लिए संवर का ढक्कन लगावें। हिंसा आस्रव को रोकने के लिए अहिंसा का अवलम्बन लें कि तीन करण तीन योग से किसी भी जीव की हिंसा करूं नहीं, कराऊं नहीं एवं अनुमोदन भी नहीं करूं। असत्य को सत्य से हरायें, चोरी को अदत्तादान से रोकें। मैथुन भाव को ब्रह्मचर्य से रोकें। परिग्रह को अपरिग्रह की आराधना से रोकें। इस प्रकार पंच पापों को पंच अपापों के आचरण से रोकें।

पंच इन्द्रियाँ, जो चंचल बनी हुई अपने-अपने विषयों में जैसे-कर्णेन्द्री मधुर-कड़क शब्दों में, चक्षु मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में, घ्राण सुगंध-दुर्गंध में, रसना सरस-विरस पदार्थों में, स्पर्शेन्द्रिय अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्शों

के संवेदन में, राग-द्वेष के विकारों में जाता है; उन्हें रोकना, समत्व में रहना, पंचेन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेष नहीं करना, मन में अशुभ विचार, शुभ विचार, वचन से शुभाशुभ वाणी एवं काया से शुभाशुभ प्रवृत्ति आदि कार्यों पर जितने-जितने अंशों में हम नियंत्रण करेंगे उतने-उतने अंश हम देश संवर के भागी होंगे। आस्रवागमन के प्रबल कारण कषायों को जीतने के लिए क्रोध को क्षमा भाव से, मान को विनम्रता से, माया को सरलता से और लोभ को संतोष भाव से जीत सकते हैं और देश संवर में निज को स्थापित कर सकते हैं। समकित प्राप्ति के बिना संवर असंभव है एवं प्रथम समकित की प्राप्ति से जीव चतुर्थ गुण को प्राप्त करके मिथ्यात्व के आस्रव से बच जाता है। तदनन्तर उसकी आन्तरिक साधना जैसे-जैसे वर्धमान होती है वैसे-वैसे अप्रत्याख्यानावरण के कारण (क्षयोपशम) पंचम गुण, प्रत्याख्यानावरण के क्षयोपशम के कारण छठा गुण एवं आगे संज्वलन के क्षयोपशम से चारित्र में निर्मलता और उपशय व क्षय से क्रमश: यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है।

देश विरत एवं सर्व विरत में आने पर जीव को अव्रत नामक आस्रव भी रुक जाता है। प्रमाद के नाश के कारण सप्तम गुण में प्रमाद आस्रव कषाय के उपशम एवं क्षय के कारण क्रमश: 11वां और 12वां गुण मिलने पर कषाय आस्रव भी रुक गया। मन, वचन, काया रूप योगों की प्रवृत्ति भी जिस गुण में नहीं होती है ऐसा अयोगी केवली गुण जहाँ जीव को योग के कारण भी आस्रव नहीं होता है जीव क्रमश: आत्माओं में उत्तरोतर वृद्धि करता हुआ अपने परिणामों को श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम अवस्था को प्राप्त करता हुआ परिपूर्ण संवर को प्राप्त कर लेता है। संवर अर्थात् आत्मा को ऊँचा उठाने में सहायक तत्त्व अथवा उसकी पूर्व भूमिका। बिना संवर के जीव को समकित, देश विरति, सर्वविरति, अप्रमत्तता, अकषायी और अयोगी अवस्था की प्राप्ति नहीं होती है। इन सब अवस्थाओं की प्राप्ति में कारणभूत एक मात्र तत्त्व, संवर है। जीव आत्महित के लिए संवर की आराधना करे। अनेक आयामों एवं अनुष्ठानों से जुड़ने का प्रयत्न करे। भिन्न-भिन्न उपायों द्वारा जीव अपने जीवन में द्रव्य संवर एवं भाव संवर करे। महामार्ग पर आगे बढ़ता जाय। वह संवर भविता के अन्तर्गत 20 प्रभेदों को समझने का प्रयत्न करे।

जैसे-जैसे वह बीस भेदों को समझेगा वैसे-वैसे उसे इन्द्रिय संयम, कषाय संयम एवं योग संयम की प्राप्ति होने लगेगी। वह क्रमश: अपने को कौतुहल भावों से अलग कर लेगा। उसकी चंचलता, स्थिरता में बदलने लगेगी। वह जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा उसके जीवन में गंभीरता आने लगेगी। वह कैसी भी परिस्थिति में अपने को अविचल भाव से टिका पाएगा। वह अवस्था प्राप्त होती है संवर से।

संवर के उत्कृष्ट आचरण के प्रभाव से ही गजसुकुमाल को ऐसी स्थिरता प्राप्त हुई। तीर्थंकर भगवान द्वारा सहे गये कष्ट भी संवर की आराधना से ही संभव हो पाए। उत्तम ध्यान की प्राप्ति में संवर ही प्रबल सहायक है। संवर के सहाय्य से ही आत्मा उच्च दशा को प्राप्त कर पाती है। अनन्त सिद्ध भगवान में अनन्त सुख का कारण संवर ही है। उस अनन्त सुख के अनन्तवें भाग का अनुभव समकित संवर वाला जीव कर पाता है। अनन्त काल में जितने भी जीवों ने अनन्त ज्ञान से अनन्त सुख की दशा को प्राप्त किया है उसका कारक संवर ही है। भूतकाल में जब-जब भी जीव सुखी हुआ है उसका कारण संवर ही है। अनन्त भूतकाल में जितने भी जीव निगोद के दु:खों को सहते हैं उसमें कारणभूत आस्रव ही है अर्थात् आस्रव के कारण ही जीव अनन्त दु:खों की सृष्टि करता है एवं संवर के कारण ही जीव अनन्त सुखों का सर्जन करता है।

संवर का माहात्म्य जिनेश्वर भगवंतों ने फरमाया है। भूतकाल के सभी तीर्थंकर संवर प्रधान धर्म का उपदेश देते हैं। वर्तमान में भी बीस विहरमान भगवंत संवर की ही देशना देते हैं एवं अनागत में आगत सभी तीर्थपति संवर की ही स्थापना करते हैं। इसलिए सभी हितकामी, श्रेयकामी जीवों को संवर की आराधना करनी चाहिए। संवर से आत्मा को रक्षित करना चाहिए। संवर के महाप्रासाद में स्थित होकर ध्यानमग्न होना चाहिए। इस हेतु उसे 22 परिषह को समभाव से सहन करना, 5 समिति का सम्यक् रीति पालन करना, 3 गुप्ति से चेतना को गुप्त करना, अनगार के दस धर्मों में रमण, 12 भावना की अनुप्रेक्षा-अनुचिंतन, 5 चारित्र का अनुपालन करना चाहिए। इस प्रकार संवर के 57 और 20 भेदों को जानकर जीवात्मा को संवर भावना

से भावित करते हुए संवर भावना में रमण कर मोक्षगामी आत्माओं का चिन्तन करते हुए निज को संवरित करना चाहिए। यह जीव अनादि काल से संवर विरोधी मानसिकता का रहा है। संवर इसकी रुचि का विषय नहीं रहा है। जैसे कोई मां अपने बेटे को बुलाती है, पुकारती है, पढ़ाई के लिए कहती है तो अज्ञानी होने से वह आवाज बेटे को अच्छी नहीं लगती। वह चिढ़ता है। क्रुद्ध होता है, नाराज होता है। उसी तरह गुरु महाराज भी शिष्यों को प्रेरित करते हैं, वारणा करते हैं, दण्ड-प्रायश्चित्त प्रदान करते हैं तो गुरुदेव का यह व्यवहार शिष्यों को अच्छा नहीं लगता। यह शिष्यों का अज्ञान है।

कदम-कदम पर पुलिस है, सेना खड़ी है, लोगों को सतर्क कर रही है। गश्त कर रही है। बंदूक उसके हाथ में है। बंदूक-गोली सारी चीजें लेकर सेना सीमा पर तैनात है। सेना के प्रति लोगों का आक्रोश उनका अज्ञान है।

बेटी को क्लब जाना अच्छा लगता है। सजने-संवरने में उसकी रुचि है। पुरुष मित्रों के साथ घूमने जाने में आनंद आता है। देर रात घर पहुंचना उसकी आदत बन रही है। बिना बताये घर से बाहर जाना और न जाने कहां पहुंचना उसके लिए आम बात हो गई है। रात-रात भर मोबाइल से लगे रहना और चौबीस घंटे ऑन लाइन रहना उसके चलन में आ चुका है। कपड़े फैशनेबल हैं। बालों पर कलर है, होंठों पर लाली है। इन सबके प्रति उसका आकर्षण दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इन सब में माता-पिता, दादा-दादी की दखल उसे अच्छी नहीं लगती। ये उसकी नादानी है।

बालक को मां की डांट अच्छी नहीं लगती। शिष्यों को गुरु का अनुशासन नहीं रुचता। जनता को सैनिकों की गश्त नहीं सुहाती। बेटी को मां की बातें बिलकुल नहीं जंचती। परंतु...

बालक फेल हो जाता है तब मां को याद करता है। शिष्य भटक जाता है फिर गुरु दिखने लग जाते हैं। दूसरे देश युद्ध करके स्वदेश की सीमा में प्रविष्ट हो जाते हैं तब सेना की सुरक्षा याद आती है। बेटी मां की हिदायतों के बारे में सोच-सोच कर तब आंसू बहाती है, जब किसी बुरे लड़के की संगत में फंस जाती है, उसकी आबरू असुरक्षित हो जाती है, उसके साथ अभद्र व्यवहार होने लग जाता है।

ये सारी बातें एक भव से संबंधित हैं, परंतु संवर भव-भव से संबद्ध है। हमें अहिंसा नहीं रुचती है। हमें सत्य का आचरण नहीं भाता है। हमें ब्रह्मचर्य बोझ लगता है। हमें प्रमाद त्यागने की बात नहीं सुहाती है। हमें सामायिक करना अच्छा नहीं लगता। हमें 12 व्रत जंचते नहीं हैं। हमें संयम का पालन, पंच महाव्रतों की आराधना पहाड़ के समान लगती है। पापों में हमें आनंद आता है। धर्म हमें नहीं सुहाता है। पापों में घंटे निकल जाते हैं, धर्म का एक मुहूर्त भी भारी पड़ता है। पापों में मन बहता चला जाता है। धर्म में प्रेरणा की जरूरत पड़ती है। पापों में जीव दौड़ता है। धर्म में धक्का देना पड़ता है। पाप भाते हैं, धर्म में उबकाई आती है। आस्रव अच्छे लगते है, संवर का नाम लेते ही ...

परिणाम

नरक के भयंकर दु:ख...

तिर्यंच के भयंकर कष्ट...

निगोद की यात्रा का आरंभ...

एकेन्द्रिय आदि योनियों में भ्रमण...

विकलेन्द्रियों में जन्म-मरण...

किल्विषी योनि के देवों में दुत्कार, असम्मान, भर्त्सना का व्यवहार

और वह देव याद करता है

वह नैरयिक आंसू बहाता है

वह तिर्यंच भी याद करके रोता है कि अहो! मैंने भगवान की बात नहीं मानी। गुरुजनों का कहा नहीं सुना। उनके अनुसार वर्तन नहीं किया। उनके अनुसार प्रवृत्ति नहीं की। अगर कर लेता तो नरक के दु:ख नहीं सहने पड़ते। अगर कर लेता तो किल्विषी में नहीं आना पडता। अगर कर लेता तो तिर्यंच में नहीं भटकना पड़ता। मैंने संवर का पालन नहीं किया उसका भयानक परिणाम मेरे सामने है, पर अब क्या हो?

जैसे जाल में फंसी चिड़िया रोती-गिड़गिड़ाती है, जैसे पिंजरे में बंद शेर दहाड़ता है, गर्जता है, जैसे लौ में भस्म होता पतंगा दु:खी होता है वैसे ही आस्रव में आसक्त पुरुष दु:खी होते हैं, रोते हैं, तड़पते हैं। भयंकर कष्ट

पाते हैं। दु:खों के सागर में बहते चले जाते हैं और संवर... मां की बात मानने वाला बेटा परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होता है। गुरु के अनुशासन में रहा शिष्य यश-कीर्ति, ज्ञान का लाभ प्राप्त करता है। सैनिकों की मुस्तैदी से सीमा शत्रुओं से सुरक्षित रहती है। मां के कहने के अनुसार रहने वाली लड़की को कोई समस्या नहीं आती है। इसी तरह प्रभु वचनों के अनुसार संवर धर्म की आराधना करने वाले को, उस पर रुचि रखने वाले पर, उस पर श्रद्धा रखने वाले पर, उस पर अपने प्राणों को लगा देने वाले पर, उसका दृढ़ता से पालन करने वाले पर किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं आता है। कोई बाधा नहीं आती है।

वह नरक-तिर्यंच गतियों पर ताला जड़ देता है। देव और मनुष्य के भव को ही करता हुआ अंत में शाश्वत सुखों को पाने के लिए मनुष्य की देह धारण करके चरम शरीरी अवस्था में चारित्र संवर की आराधना करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त को प्राप्त कर लेता है।

अंत में निवेदन है कि गौर से पढ़ें, रुकें और सोचें!

सुख, सुख और इस सुख की यात्रा का परिणाम- नरक। दूसरी तरफ दु:ख, दु:ख और दु:ख। और इस दुख की यात्रा का परिणाम-मोक्ष।

क्या चाहिए? भोगों का सुख, पैसों का सुख, परिवार का सुख, संसार का क्षणिक सुख, आस्रव का तथाकथित आनंद या दु:ख, संयम का दु:ख, लोच का दु:ख, परिषहों का दु:ख, उपसर्गों का दु:ख, परिणाम मोक्ष। फैसला हमारे हाथ में है। इसी भाव में लेना है, आज ही लेना है। कहते हैं-

मोह नींद जब उपशमे, सदगुरु देय जगाय
कर्म चोर आवत रुके तब कुछु बने उपाय।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

निर्जरा भावना

वांञ्छितमाकर्षति दूरादपि, रिपुमपि सृजति वयस्यम्।
तप इदमाश्रय निर्मलभावादागमपरमरहस्यम्।।

यह तप अभीप्सित पदार्थों को दूर से भी आकर्षित कर लेता है, शत्रु को भी मित्र बना लेता है, यह आगम का परम रहस्य है, इसका तू निर्मलभाव से आसेवन कर।

- *शान्तसुधारस*

एक कम्पनी...

जिसका साम्राज्य पूरे मुल्क में फैला हुआ है। करोड़ों का टर्नओवर... लाखों की कमाई ... दिन ब दिन व्यापार बढ़ रहा है। निरन्तर कमाई बढ़ रही है। हर साल एक नया ऑफिस खुल रहा है। हर पाँच साल में एक नयी फैक्ट्री खुल रही है। सब मालिक के मन लायक चल रहा है। पूरे विश्व में छा जाने की तैयारी हो रही है। मार्केट में कम्पनी को मिसाल के तौर पर देखा जाता है। हर कोई कम्पनी से डील करना चाहता है। व्यापार बढ़ाना चाहता है।

उसके साथ पार्टनरशिप करना चाहता है। उसके शेयर खरीदना चाहता है। वह मीडिया में छाई हुई है। बिजनेस मैगजीन में उसका नाम सुर्खियों में रहता है। टॉप फाइव में उसका नाम है। एक, दो, तीन तक भी पहुंचता रहता है। वह लीडिंग कंपनी है। पूरा शहर, पूरा देश ही नहीं पूरा विश्व उसके प्रचार का केंद्र है। और...

दस साल बाद...

अचानक समय के साथ सब कुछ बदल रहा है। टर्नओवर कम हो रहा है। कमाई में गिरावट आ रही है। शेयर के मूल्य गिरने लगे हैं। शेयर धारक डर रहे हैं। कोई व्यापार करना नहीं चाह रहा। बाजार में नाम खराब हो रहा है। कम्पनी की साख पर आंच आ रही है। ऐसे समय में कम्पनी के मालिक को यदि एक ऐसा सीईओ मिल जाए जो इन सारी समस्याओं से निजात दिला सके, घाटे की भरपाई कर सके, घाटे को लाभ में बदल सके। एक ऐसा व्यक्ति जो कम्पनी में आकर ये सारे सुधार कर सके तो कम्पनी की कायापलट हो जाए।

पिछली भावना में हमने महल का उदाहरण देते हुए उसे स्वच्छ करने के लिए दरवाजे बंद करने की बात की थी। अब प्रश्न यह है कि उस कचरे को रोकने के बाद अन्दर रहे कचरे को कैसे साफ करें? उस सफाई का नाम है निर्जरा। उस कम्पनी में लगे घाटे को दूर करने का नाम है निर्जरा। हमारी आत्मा नैश्चयिक दृष्टि से शुद्ध निर्लेप, निष्कर्म एवं खालिस है। आत्म तत्त्व पवित्र है, परन्तु अष्ट कर्मों के आगमन से, आस्रव से, बंधन से आत्मा निरन्तर कर्मों से भारी होती जा रही है और अपने दु:ख में निरन्तर वृद्धि करती जा रही है। जब जीवन को जिनवाणी का श्रवण सुलभ हो जाता है एवं उसे सम्यक् ज्ञान का बोध हो जाता है, तब उसे ये बोध होता है कि मेरे दु:ख का कारण है कर्म। उन कर्मों के कारण मैं शुद्ध स्वरूप से दूर हूँ और दूर होता चला जा रहा हूँ। मुझे यदि उस शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना है तो कुछ न कुछ उपाय करना होगा।

जीव को जब तीर्थंकर प्रभु के सान्निध्य से निर्जरा तत्त्व का बोध होता है तब वह निर्जरा भावना को समझता है। उसके स्वरूप को जानकर वह उसमें पुरुषार्थी होने लगता है और जब यह मालूम पड़ता है कि आत्मा में कर्मों का आगमन एवं बन्धन जिस तरह से निरन्तर हो रहा है उससे आत्मा निरन्तर भारी हो रही है तब वह आत्म संपदा में भारी नुकसान का अनुभव करता है। जैसे उस कम्पनी का मूल स्वरूप खो गया था वैसे ही उस आत्मा का भी मूल स्वरूप खो गया है। उसकी प्राप्ति हेतु सशक्त माध्यम है निर्जरा। हमें उसे तीर्थंकर प्रभु की वाणी से समझना है और देखना है कि कैसे मैं ऐसी निर्जरा करूं जिससे अपनी खोई हुई किंवा सोई हुई सम्पदा को प्राप्त कर सकूं अथवा जाग्रत कर लूं। निर्जरा के दो भेद हैं, देश निर्जरा और सर्व निर्जरा। कर्मों का आंशिक रूप से आत्मा से पृथक्करण देश निर्जरा है एवं सर्व कर्मों का पूर्णरूपेण आत्मा से पृथक्करण, जिसे मोक्ष भी कहते हैं, सर्व निर्जरा है। अब कर्मों की निर्जरा को फिर दो भागों में बांटते हैं।

प्रथम, अकाम निर्जरा- बिना इच्छा, बिना ज्ञान के मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा की जाने वाली निर्जरा एवं दूसरी, सकाम निर्जरा अर्थात् सम्यग्ज्ञान पूर्वक, सम्यग्दृष्टि पूर्वक, मोक्ष के उद्देश्य से की जाने वाली क्रिया, अनुष्ठान

से जो निर्जरा होती है वह सकाम निर्जरा है।

अकाम निर्जरा- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउइन्द्रिय असन्नी पंचेन्द्रिय नारकी आदि योनियों में मिथ्यात्वी जीव परवशता से जो निर्जरा कर पाता है वह अकाम निर्जरा है। गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, वर्षा, अग्नि, जल, शस्त्र आदि से छेदन-भेदन, मारण आदि सारी क्रियाएँ जो बिना मन के या लाचारीवश ही जीव करता है वह निर्जरा अकाम निर्जरा है। दूसरी ओर ज्ञानपूर्वक इच्छा से, जागृत अवस्था से विभिन्न प्रकार के परिषह, उपसर्ग, कष्ट, पीड़ा को समभाव से सहन करना, समता भाव धारण करना सकाम निर्जरा का कारक है।

इस जीव ने अनादिकाल से अनन्त भवों में अकाम निर्जरा ही की है। वह नाना गति, योनि, भव, स्थान, पर्याय में जाकर नरक के कष्ट, तिर्यंच के छेदन-भेदन, प्रताड़ना को सहता हुआ मनुष्य गति के वियोग, विरह, दरिद्रता आदि कष्टों को बिना ज्ञान के परवशता पूर्वक भोगता हुआ जो निर्जरा करता है वह अकाम निर्जरा है। ज्ञानीजन कहते हैं **"जे य कंते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठि कुव्वइ साहीणे चयई भोए सो हु चाइत्ति वुच्चइ।"** वही त्यागी है जो इच्छापूर्वक त्याग करे। वही त्याग है, जो स्वाधीनता पूर्वक हो। श्री औपपातिक सूत्र में ऐसी स्त्री की बात कही गई है, जिसका पति बाल्यावस्था में ही कालधर्म को प्राप्त कर गया है, वह पूरी उम्र ब्रह्मचर्य का पालन करती है। वह लोकलाज से कर रही है। बिना इच्छा, ज्ञान एवं रुचि से कर रही है, जिससे वह देवलोक में 84 हजार वर्ष की आयु वाले देवपने में उत्पन्न होती है और वही सकाम इच्छापूर्वक त्याग किया हुआ पालित, फासित, तिरित एवं कीर्तित ब्रह्मचर्य महान फल देने वाला है। भव-भव के संचित् कर्मों की निर्जरा कराने वाला है। आगम में इस निर्जरा को सकाम निर्जरा कहा है, वही आराध्य है। **'भव कोड़ी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ'** प्रश्न है कि वैसी निर्जरा कैसे हो सकती है ? कैसे कोई जीव अपने कर्मों के वृन्द के वृन्द प्रति समय नष्ट कर सकता है ?

ज्ञानी जन फरमाते हैं कि तपस्या के माध्यम से जीव भव-भव के संचित् कर्मों की निर्जरा करता है। करोड़ों भव के संचित कर्म तपस्या से

निर्जरित हो जाते हैं। वैदिक परम्परा में भी तप का महत्त्व दर्शाया गया है। वहां कहा गया है कि तप से ही सत्य उत्पन्न हुआ है। तप से ही वेद उत्पन्न हुए हैं। तप से ही ब्रह्म की अन्वेषणा की जाती है। तप से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। तप से ही ब्रह्मलोक प्राप्त किया जाता है। तप से ही लोक में विजय प्राप्त की जाती है। तप से ही ऋषिगण त्रैलोक्य में चराचर को देखते हैं। तप की शक्ति दुरतिक्रम है। वह परिबल है तपस्या का, वह परिबल है ज्ञान का, वह परिबल है दृष्टि का, वह परिबल है उत्साह एवं अहोभाव का, जिससे सकाम निर्जरा संभव है।

संक्षेप में यूं कहें कि ऐसी निर्जरा जो मोक्ष गति में सहायक है वह सकाम निर्जरा है। जैसे गीली लकड़ी में लगी हुई आग एवं सूखी लकड़ी में लगी आग। गीली लकड़ी में लगी हुई आग लकड़ी को धीमे-धीमे जलाएगी और वही आग सूखी लकड़ी को कम समय में ही जलाकर खाक कर देगी। वैसे ही ज्ञान, कर्मरूपी लकड़ी को सुखा देता है। दृष्टि से वह लकड़ी ठूंठ प्राय: हो जाती है। वही लकड़ी जब तप रूपी अग्नि का संस्पर्श प्राप्त होती है तो ज्वालामय बन जाती है और कर्म रूपी लकड़ी तप रूपी अग्नि से जल जाती है। यह सूखी लकड़ी एवं गीली लकड़ी का जलना सकाम निर्जरा एवं अकाम निर्जरा का प्रतीक है।

हम प्रति समय निर्जरा कर रहे हैं, परन्तु सकाम निर्जरा अर्थात् सम्यग्ज्ञान पूर्वक की गई निर्जरा, श्रावकत्व पूर्वक की गई निर्जरा, संवर पूर्वक की गई निर्जरा, अप्रमत्त की निर्जरा एवं अकषायी जीव की निर्जरा उत्तरोतर वृद्धिगत होती है। असंख्यात-असंख्यात गुणा का भेद इन निर्जराओं में है। अर्थात जितनी निर्जरा मिथ्यात्वी करता है उससे असंख्य गुणा निर्जरा समकिती जीव करता है। उससे असंख्यात गुणा निर्जरा श्रावक करता है। उससे असंख्यात गुणा निर्जरा साधु करते हैं। जितनी निर्जरा सामान्य साधु के होती है, उससे असंख्य गुणी निर्जरा अप्रमत्त मुनि को कही गई है। जितनी निर्जरा अप्रमत्त मुनि को कही गई है उससे भी असंख्य गुणा निर्जरा अकषायी आदि उपरिवर्ती गुण में कही गई है। आज के युग में श्रावक वर्ग कहता है कि सामायिक में क्या रखा है? पौषध से क्या होता है? वह संवर को निरर्थक बताता है।

कहता है क्यों साधुपना किया जाय। इन सबको व्यर्थ बताते हुए कहता है कि इन सबसे तो बेहतर है कि हॉस्पिटल खुलवाया जाय, अनाथालय, वृद्धाश्रम, स्कूल आदि परमार्थ एवं परोपकार के कार्य किये जायें, जिससे लोगों को लाभ मिलेगा। सामायिक आदि क्रियायें तो आडंबर हैं, ढकोसले हैं। साधु तो समाज पर भार है। जितना समय सामायिक एवं पौषध आदि में लगाये जाते हैं उतने समय में तो कितना परोपकार सध सकता है।

उनके लिए भगवान की वाणी उत्तर दे रही है कि निर्जरा का उद्देश्य इन सब से पूर्ण नहीं होता है। वह तो संवर से ही होता है। संवर में ही धर्म है।

तया संवर मुक्किट्ठ धम्मं फासे अणुत्तरं

अणुत्तर धर्म का स्पर्श संवर से होता है और उसी के प्रभाव से निर्जरा होती है। निर्जरा ही जीवन का सार है। यदि हमारे कार्यों से निर्जरा नहीं हो रही है तो सारी क्रियायें व्यर्थ प्राय हो जायेंगी।

उसका भी कारण है कि एक आत्मस्थ मुनि ही स्वयं का अनुसंधान कर सकता है। स्वयं को परिमार्जित कर सकता है। स्वयं चिंतन कर सकता है। आज के युग में संवर और पौषध की अत्यधिक उपादेयता है। व्यक्ति जगत्प्रपंचों के बारे में विचार-विमर्श, चिंतन-मनन करता है परंतु वह आत्म विचार, आत्म चिंतन, आत्म विमर्श करने में चूक जाता है, जिससे उसे निर्जरा का सम्यक लाभ नहीं मिल पाता। वह क्रियायें करता है परंतु वे क्रियायें समुचित निर्जरा नहीं करवा पाती। यदि आज की जीवन शैली देखी जाय तो सुबह से शाम तक वह अन्य पर ही केंद्रित है। इससे उसका अपना तनाव बढ़ रहा है। संवर उसे आत्म केंद्रित एवं स्व केंद्रित बनाता है जिससे उसकर निर्जरा बढ़ती है और वह सुख की दिशा में आगे बढ़ पाता है।

हमें अकाम निर्जरा को छोड़कर सकाम निर्जरा को धारण करना है एवं उसके उपायों को समझना है। तप निर्जरा का कारण निर्जरा तप के द्वारा होती है। संक्षेप में जहां तप है वहां निर्जरा है और जहां निर्जरा है वहां तप है। भव-भव के बद्ध निकाचित् कर्म तप द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हमें निर्जरा के उपायभूत तपों को समझना चाहिए।

आगमों में तप को दो भागों में विभक्त किया गया है- बाह्य एवं आभ्यंतर। बाह्य एवं आभ्यंतर दोनों तप छः प्रकार के हैं। जो तप बाहर दिखते हैं, बाहरी क्रियाओं से जिसकी अनुभूति हो सकती है, वह तप है बाह्य तप। इसका प्रथम भेद है- अनशन।

अनशन- अन्+अशन। अशन अर्थात् भोजन। जिस तप में भोजन का त्याग किया जाता है वह तप अनशन तप कहा है। इसके इत्वरिक थोड़े दिन, महीने के लिए किया गया तप इत्वरिक तप कहलाता है। दूसरा यावत्कथिक- सम्पूर्ण जीवन के लिए आहार का त्याग करना यावत्कथित अनशन है (संथारा)। ये अनशन भी विवेक पूर्वक धारण किया जाता है। साधक अपने भीतर-

बलं थामं च पेहाए, सद्धा मारुग्गमप्पणो खेत्त कालं च विण्णाय तहप्पाणं निजुंजए

बल-शक्ति, श्रद्धा, निरोगता, क्षेत्र, काल आदि सभी अवस्थाओं पर चिंतन करके इन दोनों में से किसी भी तप को धारण करें। यह तप अपने आप में अद्भुत एवं आनंददायी है। यह ज्ञानपूर्वक किया जाने वाला अनुष्ठान है। इसमें किसी का दबाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से भी नहीं है। साधक को निज का निरीक्षण करना है और निरीक्षण करते हुए जब उसे लगे कि मैं तप का पालन कर सकता हूँ तब उसे धारण करे।

आज कुछ लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते हुए इस जैन प्रविधि की अवहेलना करते हैं। कभी वे तप के विरोध में खड़े होते हैं, कभी वे संथारा का विरोध दर्ज कराते हैं। प्रभु ने स्पष्ट रूप से अन्तरावलोकन पूर्वक बल आदि का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए तप आराधना का निर्देशन किया है।

अवमौदर्य- अवमौदर्य अर्थात् भूख से कम खाना, उदर को पूर्ण नहीं करना। इसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से भी भेद हैं। द्रव्य से अर्थात् जितने भोजन की क्षुधा है उससे कम ग्रहण करना एवं भाव से अपने कषायों पर नियंत्रण करने की भी प्रेरणा दी है, जो कि निर्जरा कारिका है। यदि मनुष्य

अवमौदर्य का स्वरूप समझ ले तो वह अनेक अपायों से स्वयं को सुरक्षित कर सकता है।

आवश्यकता से अधिक संचय के कारण ही वैश्विक भुखमरी एवं गरीबी में इजाफा हो रहा है। धनिक और धनिक बनते जा रहे हैं व गरीब और गरीब। प्राकृतिक संपदाओं और खनिज पदार्थों के दोहन ने वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, भूगर्भशास्त्रियों को चिंता में डाल दिया है। वस्तुओं का उत्पादन और उनकी खपत देखते हुए ये लोग पूरे विश्व में जगह-जगह जन जागृति के लिए सम्मेलन कर रहे हैं।

कुछ वर्ष पूर्व कोपेनहेगन अफ्रीका में हुए एक सम्मेलन में एक बालिका ने अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा से सवाल किया था कि अंकल, आप हमारे लिए क्या छोड़ेंगे? अगली पीढ़ी कैसे अपना जीवन यापन कर पायेगी?

इस भयावह उभरते प्रश्न को बराक ओबामा सहित पूरे विश्व ने सुना परंतु जवाब न तब किसी के पास था न आज किसी के पास है। सवाल है कि क्या इसका जवाब नहीं मिल सकता? जवाब मिल सकता है। प्रभु की वाणी में इसका समाधान है कि यदि हम उनोदरी तप की आराधना करें तो विश्व को बचाया जा सकता है।

उनोदरी की बहुत लम्बी व्याख्या की जा सकती है, परंतु सार रूप में एक बिंदु पर विचार कर उनोदरी की ओर अग्रसर हो सकते हैं। वह बिंदु है भाव उनोदरी। भाव उनोदरी में विचारों में संयम की बात कही गई है। वर्तमान समय का युवा जिस जटिल दौर से गुजर रहा है, भाव उनोदरी अपनाकर उस जटिल दौर के प्रभाव से बच सकता है। कौन से विचार करना और कौन से विचार नहीं करना, किन विचारों पर लगाम लगाना जैसी मर्यादा भाव उनोदरी के अंतर्गत आयेगी। विचारों की उनोदरी से वह शांत बन सकता है। समाधि प्राप्त कर सकता है। विचारों की उनोदरी अपनाकर वह डिप्रेशन और सिजोफ्रेनिक अवस्था से बच सकता है। इतनी ताकत है भाव उनोदरी की।

भिक्षाचर्या- जैसे मधुकर स्वयं को कुसुमों के रस से तृप्त कर लेता

है, वह किसी एक पर आश्रित नहीं रहता है, भ्रमणशील भ्रमर विभिन्न कुसुमों पर विहरण करता हुआ उसका रस ग्रहण करके स्वयं को तृप्त करता है एवं पुष्प को भी किलामना उत्पन्न नहीं करता है, वैसे ही मुनि भिक्षा जीवी होते हैं, जो किसी एक पर आश्रित नहीं होते और आधाकर्म आदि आहार के त्यागी होते हैं। वे गृह कुलों में भिक्षा के लिए विचरण करते हुए थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करके मधुकरी वृत्ति करते हैं। ऐसी वृत्ति जिसमें स्वयं एवं पर दोनों का पीड़न न हो, भिक्षाचर्या तप है। यह तप क्यों है ? तो कहा है कि -

सव्वं से जाइयं होइ नत्थि किंचिं अजाइयं

अर्थात साधु को सभी कुछ याचना से मिलता है। बिना मांगे साधु कुछ भी प्राप्त कर नहीं सकता है, इसलिए मांगना होगा और मांगने के लिए कहा है- **मांगन वाला मर गया, मांगन मरण समान**

यानी कि मांगने वाला मर चुका है और मांगना मरण के समान है। अर्थात् यावत् आपका अहंकार नहीं मरता तावत् आप मांग नहीं सकते हैं। याचना दुष्कर है और अहंकार का त्याग करके, उसे मार करके जो मांगते हैं, लाभ-अलाभ, अनुकूल-प्रतिकूल, मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी पदार्थों को समत्व से प्रासुक एषणीय ग्रहण करते हैं, वही भिक्षाचर्या तप है। इसका अपर नाम वृत्ति संक्षेप भी है।

रस परित्याग- रसों का परित्याग। षट्रसों का त्याग एक तप है। आप सोचें कैसे? एक ऐसी थाली जिसमें न दूध है न घी, न दही है न तेल, न मीठा है। ऐसी थाली तो एक बार के लिए फिर भी चल सकती है, परन्तु नमक का भी त्याग। आप कल्पना करें कि ऐसी थाली जिसमें नमक भी नहीं है। षट्रसों का त्याग करना, ज्ञानपूर्वक त्याग करना, लाभ होने पर भी त्याग करना, स्वस्थ होने पर भी त्याग करना, अनुकूलता होने पर भी त्याग करना, रस परित्याग है। इसके विगय त्याग आदि 9 भेद ग्रन्थों में कहे हैं। धन्ना अनगार जैसे महातपस्वी, जो कि 14 हजार मुनियों में सर्वश्रेष्ठ तपस्वी थे, वे रस परित्याग की मिशाल हैं।

कायक्लेश- काया-शरीर, क्लेश-कष्ट। ये क्या कहा जा रहा है?

क्लेश और निर्जरा, दु:ख और निर्जरा? ये कैसे संभव है। उत्तर में निवेदन है कि जीव किसी भी कार्य को करता है उसमें काया को तो क्लेश होता ही है, परन्तु सम्यग्बोधि पूर्वक धीर-गंभीर अवस्था में काया को क्लेशित करना कायाक्लेश कहा है। ये कायाक्लेश क्यों कहा है ? तो निवेदन है कि कायाक्लेश ही करना है, उसके साथ वचन क्लेशित नहीं होवे, मानसिक क्लेश न होवे, ये ध्यान रखना है। काया को कष्ट देना विभिन्न धर्मों में अभिप्रेत है, परन्तु जैन आचार प्रणिधी में ज्ञानपूर्वक क्लेश देना, तपाना, परिगणित है। काया रूपी बर्तन में आत्मा रूपी मक्खन को तप रूपी अग्नि के ताप (क्लेश) से तपाना, घी का रूप देना। इसके भी अनेक भेद हैं। इसमें जो तप मुनि करते हैं वे तप अथवा इनसे भी कठिनतम तप अन्यतीर्थी करते हैं, परन्तु वे तप की श्रेणी में परिगणित नहीं होते। जो कायाक्लेश ज्ञानपूर्वक होता है वही निर्जरा करता है। सकाम निर्जरा कारक बनता है जिसके वीरासनादि अनेक भेद हैं।

प्रतिसंलीनता- प्रति+संलीनता- अन्य के प्रति अलीनता। सम्यक्लीनता। अद्यावधि आत्मा इन्द्रिय, कषाय आदि में लीन बनी हुई है। बाहरी विषयों में रत है। उसे प्रति अर्थात् उन विषयों, कषायों, इन्द्रियों से निज अर्थात् आत्मा में लीन बनना प्रतिसंलीनता कहलाती है। संक्षेप में अलीन भाव प्रतिसंलीनता का परिणाम है। वर्तमान में मानव पर में लीन है। उसे पर का बोध, पर की खबर, पर का अध्ययन, पर का विश्लेषण अधिक बना है। इससे वह विचलित होता है। यह विचलन प्रतिसंलीनता तप से समाप्त हो सकती है। प्रतिसंलीन व्यक्ति कभी असफल नहीं होगा। इस जीव ने अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण किया है। न मालूम कितने भव उसके देव मनुष्य आदि गतियों में बीते हैं और इन भवों में उसे अनेक प्रकार के इन्द्रिय विषयों को सेवन करने का अवसर आया है। नानाविध उन विषयों की अप्राप्ति एवं प्राप्ति से कषायों का उदय हुआ। मेरी पवित्र आत्मा कषायों से मलिन बनी। अब इस जीव ने कभी किन्हीं मुनियों का उपदेश सुनकर चारित्र को भी स्वीकार किया होगा। परन्तु इन कषायों एवं विषयों की लीनता नहीं छोड़ी। वह बनी ही हुई है। अब इस भव में कषायों एवं विषयों से प्रति अर्थात् विपरीत सं- सम्यक् प्रकार से लीनता-लीन होना प्रतिसंलीनता का स्वरूप है।

(1) इन्द्रिय विषयों में राग-द्वेष नहीं करना।

(2) चार कषायों को रोकना और अकषाय भाव धारण करना।

(3) मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोककर शुभ में लगाना।

(4) साधक को स्त्री, पशु, नपुंसक रहित शय्या का सेवन करना।

इन्हें करने से उसकी बाह्य संलीनता मिटेगी और वह कर्म निर्जरा में सहायक बनेगी। इस प्रकार बाह्य तप से रसना त्याग, शरीर लाघव, इन्द्रिय विजय, संयम सुरक्षा एवं कर्म निर्जरा उपर्युक्त लाभ बाह्य तप से जीव को प्राप्त होते हैं। बाह्य तप का वर्णन करने के अनन्तर आभ्यंतर तप का व्याख्यान किया है।

प्रायश्चित्त- प्राय:+चित्त। प्राय: बहुलता से चित्त- आत्मा की विशुद्धि कराने वाला तप प्रायश्चित्त है। सामान्य भाषा में कहें तो लगे पाप का शोधन, प्रक्षालन, प्रथम गुरु महाराज के समक्ष कथन, अन्तर मन का निरीक्षण तदुपरान्त परिशोधन, प्रक्षालन प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त से मनशुद्धि एवं आत्मशुद्धि होती है। वह इसलिए कि आत्मा जब गुरु महाराज के समक्ष स्वयं द्वारा आसेवित अकृत्यों का कथन शुद्ध हृदयपूर्वक करती है तब गुरु महाराज के समक्ष कहने से उसका मन एवं आत्मा हल्की हो जाती है और उसका परिणाम आत्मशुद्धि है। इसके दस भेद किये गये हैं, जो इस प्रकार हैं-

(1) किन्हीं दोषों का प्रायश्चित्त गुरु महाराज के समक्ष आलोचना मात्र से ही हो जाता है। जैसे पुलिस के सामने चोर नहीं आता है अथवा रहा हुआ चोर भी भाग जाता है, वैसे ही गुरु रूपी पुलिस के समक्ष पाप रूपी चोर भाग जाता है। वह आलोचनार्ह कहलाता है।

(2) किन्हीं पापों के लिए प्रतिक्रमण अपेक्षित है। उभयकाल भाव प्रतिक्रमण भी आत्मा की शुद्धि करता है, वह प्रतिक्रमणार्ह है।

(3) जिन दोषों की शुद्धि आलोचना, प्रतिक्रमण दोनों से होती है वह तदुभयार्ह है।

(4) जिन दोषों की शुद्धि के लिए विशेष अनशन आदि आहार त्याग करना होता है वह विवेकार्ह है।

(5) शरीर के ममत्व का त्याग करना, काया का त्याग करना कायोत्सर्ग व्युत्सर्ग है। इसमें भी अत्यधिक शुद्धि होती है।

(6) किसी दोष के शोधन के लिए गुरु महाराज तप, उपवास, बेला आदि का प्रायश्चित्त प्रदान करते हैं तपार्ह है।

(7) जिस दोष की शुद्धि दीक्षा छेद आदि से होती है वह छेदार्ह है।

(8) जिस पाप की शुद्धि मूल से चारित्र का छेद अर्थात् नवीन दीक्षा प्रदान करने से होती है वह मूलार्ह है।

अन्य दो प्रायश्चित्त विशिष्ट गंभीर अपराध होने पर उसे गृहस्थ भूत अवस्था में रखकर विशेष तप द्वारा उसका शोधन करवाया जाता है। वे प्रायश्चित्त (9) अनवस्थाप्य एवं (10) पाराञ्चिक हैं।

इस प्रकार प्रायश्चित्त के दस भेद हुए। प्रायश्चित्त, संहनन शक्ति, काल, संयम, विराधना, धृति आदि को देखकर उस पाप की शुद्धि के लिए दिया जाता है, जो कि जैनागम में अत्यधिक मनोवैज्ञानिक और सटीक है।

आजकल मनोवैज्ञानिकों, थेरेपिस्ट की बहुत मांग होती चली जा रही है। वे पहले विदेशों में ही होते थे, आजकल भारत में भी उनका चलन हो गया है। वे लोग पीड़ित व्यक्ति की काउंसिलिंग करते हैं। काउंसिलिंग के द्वारा वे पीड़ित व्यक्ति के मन में बैठी बातों को निकालते हैं। कभी दो, कभी चार और कभी दस सीटिंग में भीतर बैठी बातें निकलती हैं। भीतर बैठी बातें निकलने से रोगी दुरूस्त होने लगता है। मन में गहरे तक बैठी बातों से व्यक्ति दुखी हो जाता है, तनाव में चला जाता है। कई बार वह आत्म हत्या तक कर लेता है। एक अच्छा काउंसलर इन सब बातों से उसे बचाता है। जिस तरह अच्छा काउंसलर किसी व्यक्ति को तनाव, दुख आदि से बचाता है, उसी तरह गुरु महाराज काउंसलर होते हैं। गुरु महाराज शिष्य के विचारों की काउंसिलिंग करते हैं। इसे आगमिक भाषा में आलोचना कहा गया है। आलोचना सुनने वाले के अनेक गुणों में एक यह भी है कि वह शिष्य के

ग्लानि भाव को दूर करे। लज्जा, शंका, पाप कहने की हिचक को मिटाये फिर उसकी बात निश्शंक होकर सुने, उचित प्रायश्चित दे, जिससे शिष्य के पाप-दोष की शुद्धि हो सके।

विनय- विनीयते येनाष्टप्रकारं कर्मपनीयते स: विनय:

जिससे अष्ट कर्म आत्मा से अलग होते हैं, हटते हैं, वह विनय है। इसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मन, वचन, काया, लोकोपचार समझने योग्य हैं। ज्ञान विनय के पाँच भेद हैं। दर्शन विनय के दो भेद हैं। चारित्र विनय के पाँच भेद हैं। मनो विनय के प्रशस्त अप्रशस्त के भेद से दो हैं। इसी तरह वचन और काया के भी दो भेद जानने चाहिये। लोकोपचार विनय के 7 भेद हैं और इसी तरह ऊपर दृष्टिगत होता है। इसी तरह पूज्य पुरुषों के प्रति आदर करना, मोक्ष के साधनभूत सम्यक् दर्शनादि के प्रति तथा उनके साधक गुरु आदि के प्रति योग्य रीति से सत्कार-आदर आदि करना तथा कषायों से निवृत्ति करना, रत्नत्रय साधक पुरुषों के प्रति, गुणों में अधिक पुरुषों के प्रति नम्र वृत्ति रखना, अशुभ क्रिया रूप ज्ञानादि के अतिचारों को वि+नयन करना, हटाना, कषायों और इन्द्रियों को नमाना, विनय के अन्तर्गत है।

विनय से जीव पूज्य बन जाता है। उसके सारे संशय छिन्न हो जाते हैं। वह गुरु के मन को प्रीतिकर होता है। अनेक लब्धियों से सम्पन्न बन जाता है, समाधि से संवृत्त हो जाता है तथा पाँच महाव्रतों का पालन करके महान् द्युतिमान् हो जाता है। देवों, गन्धर्वों और मनुष्यों से पूजित वह विनीत शिष्य मल पंक से निर्मित औदारिक शरीर का त्याग करके शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है अथवा अल्प कर्म रज वाला महान् ऋद्धि सम्पन्न देव बनता है। ऐसा भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाया है। ऐसे विनय की आराधना करके जीव आत्मिक आनन्द का लाभ प्राप्त कर सकता है।

वैयावृत्य- व्यावृत्तो - व्यापार प्रवृत्त अर्थात् व्यापार में लगा हुआ। कौन से व्यापार में तो कहा गया है कि भगवान द्वारा प्ररूपित प्रवचन में जो क्रिया करने की प्रेरणा दी है अथवा जिन-जिन अनुष्ठानों को, व्यापारों को करने का निर्देश दिया गया है, उनमें प्रवृत्त होना वैयावृत्य है। उस मार्ग का

बोध कराने में सहायक आचार्य आदि दस हैं, जिनकी वैयावृत्य में लगे रहना एवं उन्हें रुग्णावस्था में साता पहुँचाना वैयावृत्य है, जिससे आठ कर्मों की निर्जरा होती है।

स्वाध्याय- सुष्ठु मर्यादया काल वेला परिहारेण पौरुष्यापेक्षया वाऽऽध्याय: स्वाध्याय:

जो मर्यादा पूर्व काल के आने पर आगम ग्रन्थों का अध्ययन एवं पठन-पाठन है वह स्वाध्याय है, जिसके द्वारा हेय-ज्ञेय-उपादेय का बोध होता है। इसे 5 भेदों से जाना जाता है, जो क्रमश: गहरे से गहरे हैं। प्रथम साधक वाचन करता है। यह पठन-पाठन रूप हो सकता है। स्वयं पढ़ना और दूसरों को पढ़ाना इसमें परिगणित है। इससे स्वयं एवं पर दोनों के ज्ञान में वृद्धि होती है। इसके अनन्तर पृच्छना-अधीत विषय में जिज्ञासा होने पर गुरु महाराज से प्रश्न एवं प्रति प्रश्न करना।

परियट्टणा- जो ज्ञान धारण किया है उस मौखिक ज्ञान का परावर्तन करना, अभ्यास करना, दोहराना। पढ़े हुए, पूछे हुए एवं दोहराए हुए ज्ञान में सहज उपयोग लगाना, उस पर चिन्तन करना। उसके अर्थ का चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। पठित, धृत, चिन्तित, अनुप्रेक्षित आगमों के सूत्र अर्थ का कथन करना धर्म कथा है। इस प्रकार स्वाध्याय के भेदों-प्रभेदों का ज्ञान करने से अज्ञान-अंधकार से मुक्ति मिलती है। ज्ञान का प्रकाश फैलता है।

ध्यान- साधना पद्धति का प्राण निर्जरा है एवं निर्जरा का प्राण ध्यान है। ध्यान बिना निर्जरा असम्भव है। यत्किंचित् हो भी गई तो वह मोक्ष प्राप्ति के लिए तथाभूत सहायक नहीं हो पाती है। जितनी गहरी साधना होगी उतना ध्यान गहरा होगा और जितना ध्यान गहरा होगा उतनी निर्जरा अधिक होगी। निर्जरा का आधिक्य ध्यान पर आधारित है। ध्यान उसे कहते हैं जब साधक अपने मन को किसी एक विषय, तत्त्व आदि पर एकाग्र कर देता है। जिसमें चञ्चल चित्त का निरोध हो जाता है वह ध्यान कहलाता है। जैनागमों में इसके चार भेद एवं छ: प्रभेद कहे गए हैं। उन सबकी व्याख्या यहाँ नहीं की जा रही है, परन्तु यह ध्यातव्य है कि आत्मा की शुभ गति का कारण धर्म

ध्यान है और मोक्ष गति का कारण शुक्ल ध्यान है। ध्यान से ही जीव नरक एवं तिर्यंच योनियों में जाता है एवं नानाविध यातनाओं को सहन करता है। जीव ध्यान के प्रभाव से ही कर्मरूपी ईंधन को जलाकर नष्ट कर देता है। इसलिए ध्यान को अग्नि कहा है। जैसे स्वर्ण, अग्नि में तपकर कुन्दन बन जाता है वैसे ही आत्मा, ध्यान रूपी अग्नि में कर्मों को जलाकर परमात्म रूप को प्राप्त कर लेती है।

व्युत्सर्ग- वि+उत्सर्ग। वि अर्थात् विविध प्रकार का उत्सर्ग त्याग करना। यह दो प्रकार का है- आभ्यंतर एवं बाह्य व्युत्सर्ग। बाह्य व्युत्सर्ग में साधक शरीर, गण, उपधि और भक्त, पान का त्याग करता है एवं आभ्यंतर व्युत्सर्ग में कषाय, संसार एवं कर्म का व्युत्सर्ग मननीय है। इसे द्रव्य व्युत्सर्ग एवं भाव व्युत्सर्ग की दृष्टि से भी गिन सकते हैं। द्रव्य व्युत्सर्ग में आत्मा बाह्य पदार्थों, संयोगों, संग, शरीर आदि का त्याग करती है। करेमि भंते के प्रत्याख्यान के साथ वह प्रारंभ हो जाता है, परन्तु भाव व्युत्सर्ग कषाय त्याग से संभव है। ममत्व त्याग से संभव है। कर्म त्याग से संभव है। द्रव्य व्युत्सर्ग पूर्ण सहायक नहीं है। वह आंशिक सहायता प्रदान करता है।

उदाहरण के लिए प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने द्रव्यत: संग का त्याग, संसार का त्याग कर दिया था। द्रव्य व्युत्सर्ग करके वे आतापना में स्थित थे। बाह्य रूप से ध्यानमग्न प्रतीत हो रहे थे, परन्तु वह द्रव्य व्युत्सर्ग उन्हें नरक गति के नामकर्म के बंध से नहीं बचा पाया और जैसे ही उनकी यात्रा द्रव्य व्युत्सर्ग से भाव व्युत्सर्ग की ओर हुई वह कैवल्य लक्ष्मी को उपलब्ध हो गये। ये प्रभाव भाव व्युत्सर्ग का है। साधक की साधना का मुख्य उद्देश्य कर्म क्षय एवं संसार नाश का है और भाव व्युत्सर्ग द्वारा होने वाली निर्जरा के प्रभाव से वह जीव कर्मों की निर्जरा का सम्पूर्ण नाश करके परिपूर्ण शुद्ध अवस्था को पा लेता है।

इस तरह हमने निर्जरा का तकनीकी स्वरूप समझने का प्रयत्न किया है। निर्जरा परमावश्यक भावना है। उसे उत्तरोत्तर वृद्धिवती बनाने के लिए तप का अवलम्बन आवश्यक है। तप की व्याख्या करते हुए कहा है- इच्छा निरोधस्तप:, इच्छा का निरोध करना तप है और वही निर्जरा कारक है।

व्यक्ति यदि प्रत्येक कार्य को निर्जरा से जोड़े, चिन्तन करे कि मेरी इस कार्य को करते हुए कितनी निर्जरा हो रही है और मैं उसे उत्तरोतर कैसे बढ़ाऊँ तो इसके लिए हमें निर्जरा को व्यवहारिक तल पर देखना होगा। अनशन का व्यवहारिक रूप यह होगा कि ऐसे कार्य जिसमें हमें हानि हो रही है, परन्तु दूसरे का हित सध रहा है। अपने भौतिक स्वार्थ को गौण करके दूसरों को लाभ देना, इच्छा अनशन है। ऊनोदरी में व्यक्ति इच्छा का परिमाण करे। वह इच्छा का जितना फैलाव करेगा उसका तनाव उतना ही अधिक बढ़ता चला जाएगा। जब वह अपनी इच्छाओं का नियमन एवं नियंत्रण कर लेता है तब वह अवस्था ऊनोदरी की समझे।

पाप कार्यों में रस नहीं लेना। जीव को पापों में ही रस प्राप्त होता है। वह पापों को रस ले लेकर करता है, परन्तु उसे यह बोध नहीं रहता कि मैं जितना रस लूँगा मुझे उतने कर्मों का चिकना बन्ध होगा। केवली भगवान किसी भी कार्य को करते हुए कोई रस नहीं लेते हैं सो उनका कर्मबन्ध एक समय जितना अल्पतम ही होता है। यह रस परित्याग का ही प्रभाव है।

मनस्ताप का त्याग करके काया को तपाना कायाक्लेश है। यह निश्चित है कि किसी भी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति पुरुषार्थ के बिना असंभव है। दुर्भाग्य की रेखा पसीने के पानी से ही मिट सकती है। इसलिए कायाक्लेश तप द्वारा कर्मों को खपाना कायाक्लेश तप है।

इन्द्रियों का गोपन, कषायों का गोपन किये बिना क्या किसी ने सफलता प्राप्त की है? सफलता की उपलब्धि एकाग्रता से होती है और एकाग्रता इन्द्रिय गुप्ति से ही संभव है। यह गोपन की प्रक्रिया ही प्रतिसंलीनता है।

किसी भी कार्य में कुछ नवीनता लाने के लिए उस कार्य में निरन्तर लगे रहना परमावश्यक है। यदि वह किसी कार्य को एक दिन करके दस दिन छोड़ दे तो वह अभीप्सित लाभ को प्राप्त नहीं कर सकता। यह निर्विवाद सत्य है कि निरन्तरता बड़े से बड़े एवं कठिन से कठिन कार्य को भी पूर्ण कर सकती है। यह निरन्तरता वैयावृत्य है।

लक्ष्य प्राप्ति में ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। उसे लक्ष्य का

ज्ञान होना चाहिए, मार्ग का ज्ञान होना चाहिए, विधियों का ज्ञान होना चाहिये। जिसे ज्ञान नहीं है वह व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। ज्ञान प्राप्ति का उपाय स्वाध्याय है।

किसी भी क्षेत्र में जब हम चलते हैं तब हमसे त्रुटियाँ होती ही हैं। किसी से कम एवं किसी से ज्यादा गलतियाँ होती हैं। उन त्रुटियों का ज्ञान एवं उनका परिमार्जन करना होता है, जिससे साधक अपने दोषों को दूर करके निर्दोष अवस्था तक पहुँच जाए। इसके लिए प्रायश्चित्त उपयोगी है। यह बहुलता से चित्त की विशुद्धि करता है।

सफलता कामी पुरुष को ज्ञान की आवश्यकता होती है और ज्ञान की प्राप्ति गुरु से होती है। गुरु की आराधना विनय से होती है। शिष्य, गुरु का विनय करेगा तो गुरु का आशीर्वाद शिष्य पर बरसेगा, जिससे उपलब्ध ज्ञान उसके लिए मुक्तिदायक बनेगा।

क्या आप सोच सकते हैं कि कोई व्यक्ति बिना ध्यान लगाए अपने किसी भी कार्य को ठीक ढंग से कर सकता है ? खाना बनाने से लेकर खाने तक, सिलाई करने से लेकर हवाई जहाज उड़ाने तक हर कार्य में ध्यान की आवश्यकता है।

कोई धर्म माने या ना माने, आस्तिक हो अथवा नास्तिक, भोगी हो या योगी, वह त्याग की महत्ता को नकार नहीं सकता। कोई व्यक्ति त्याग किये बिना अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकता है। अपने पूर्व अवस्था का त्याग किये बिना उसे उत्तर अवस्था नहीं मिलेगी। पूर्व मार्ग का त्याग किये बिना मंजिल नहीं मिलेगी। किसी भी क्षेत्र, पर्याय, परिस्थिति, परिवेश में रहो त्याग करना ही होगा। जहाँ त्याग नहीं होगा वहाँ कलह होगा। मानव का जीवन दु:खद, त्रासद एवं पीड़ित बनकर रह जाएगा। हाथ यदि त्याग न करे तो कौर मुंह में नहीं जायेगा। दांत त्याग नहीं करे तो जीभ पर नहीं जायेगा और गला त्याग नहीं करे तो पेट में नहीं जायेगा। जीभ उसका स्वाद नहीं ले पायेगी। जीभ स्वाद न ले तो रस ही खत्म और पेट त्याग न करे तो सोचो क्या होगा? बादल पानी का त्याग न करे, समुद्र भाप का त्याग न करे, नदियां पानी का

वितरण न करें, पेड़-पौधे फलों को समेट कर रख लें, सभी त्याग वृत्ति का त्याग कर दें तो सोचो सृष्टि की दशा क्या होगी। त्याग ही प्रधान है और वह हमें कायोत्सर्ग नामक तप सिखाता है। इसलिए ... त्याग नामक तप की आराधना करो, जिसे हमने व्युत्सर्ग के नाम से जाना है वही त्याग है। जिसका पालन करके हम सुखी, परम सुखी बनेंगे, जिसे भगवान ने मोक्ष कहा है। संक्षेप में अष्ट कर्मों का सम्पूर्ण त्याग करना व्युत्सर्ग है।

तो चलो करो तैयारी...
निर्जरा में उतरने की तैयारी..
निर्जरा में नहाने की तैयारी...
निर्जरा में समाने की तैयारी...
कर्मों के हनन की तैयारी...
दोषों के नाश की तैयारी...
आत्मयुद्ध की तैयारी...
आत्मद्वन्द्व की तैयारी...

एक ऐसी तैयारी जो मुझे मेरे ही विरुद्ध करनी है। एक ऐसी तैयारी जिसमें मैं ही मुझे मारूंगा। एक ऐसी तैयारी जिसमें मैं ही लड़ाका हूँ। एक ऐसी तैयारी जिसमें आतंकी भी मेरे हैं और सेना भी मेरी है। एक ऐसी तैयारी जिसमें बन्दूक भी मेरी है और सीना भी मेरा है। एक ऐसी तैयारी जिसमें सिर भी मेरा है और बाण भी मेरा है। मैं ही मेरा मारक हूँ, मैं ही मेरा संहारक हूँ। मैं ही मेरा नाशक हूँ और मैं ही मेरा विध्वंसक हूँ। मैं मेरे ही तैयार किये हुए दुश्मनों को सफाया करने की जंग छेड़ चुका हूँ।

बस इसी का नाम है निर्जरा भावना। इसमें आत्मा कर्मों से युद्ध करती है। कर्मों का नाश करती है। कर्मों का संहार करती है। कर्मों को भस्म कर देती है। स्वयं के निर्मित अर्जित कर्मों को स्वयं ही नष्ट करती है। ऐसी है निर्जरा भावना, जो 'आत्मना युद्धस्व' पर आधारित है

यही कहता है आत्मना युद्धस्व (आत्मा से युद्ध करो)

यही प्रेरणा है अप्पाणमेव जुज्झाहि (आत्मा से ही युद्ध करो)

यही जागरण है धुणे कम्म सरीरगं का (कर्म शरीर का नाश करो)

यही उपदेश है जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जाए जिणे का...

(हजारों योद्धाओं को जीतने से भी श्रेष्ठ है स्वयं को जीतना)

अर्थात् स्वयं से युद्ध करो, स्वयं को पराजित करो और स्वयं को विजेता घोषित करो। विजेता बनो। निर्जरा, दुर्भावों पर सुभावों की विजय है। निर्जरा, संसार पर मोक्ष की विजय है। निर्जरा, कमियों पर पूर्णताओं की विजय है। निर्जरा भावना आत्मतत्त्व को पूर्ण खालिस बनाने वाला उपक्रम है। जीव अपने वीर्य का पूर्ण उपयोग करके परम शक्ति को जगाकर इस युद्ध में कूद पड़े और कर्मों का नाश करता चला जाए। जैसे-जैसे कर्मों का नाश होगा, वैसे-वैसे उसका सुप्त ज्ञान प्रकट होगा। सुप्त शक्तियाँ जागृत होंगी। सुप्त चेतना परिष्कृत होती चली जाएंगी।

हे आत्मन्! मन को शान्त, हृदय को निर्मल, काया को निश्चल बनाकर निर्जरा अभियान में जुट जाओ। समकित से देशविरति एवं देशविरति से सर्वविरति, सर्वविरति से अप्रमत्तता, अप्रमत्तता से श्रेणी आरोहण, श्रेणी आरोहण से मोह क्षय, मोह क्षय से केवलज्ञान, केवलज्ञान से ईर्यापथिक अवस्था, ईर्यापथिक अवस्था से केवलिसमुद्घात, केवलिसमुद्घात से आवर्जीकरण, आवर्जीकरण से शैलेषीकरण और शैलेषीकरण से बचे हुए सारे कर्मों का नाश करके 5 लघु अक्षर का उच्चारण करने की समयावधि में सिद्ध क्षेत्र की प्राप्ति जो जन्म, मरण, रोग, शोक, दुःख, संताप से रहित है। अव्याबाध एवं अनन्त सुख का आस्वादन करने वाली यह निर्जरा भावना है। हे जीव! प्रमाद मत कर, निर्जरा का आचरण कर। कहा है-

ज्ञान दीप तप तैल भर, घर सोधे भ्रम छोर।
प्रबल पंच इंद्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

लोक भावना

एवं लोको भाव्यमानो विविक्त्या,
विज्ञानां स्यान्मानसस्थैर्यहेतु:।
स्थैर्यं प्राप्ते मानसे चात्मनीना,
सुप्राप्यैवाऽध्यात्मसौख्यप्रसूति:।।

भिन्न-भिन्न रूप से अनुचिन्तित किया जाता हुआ लोकपुरुष विज्ञजनों के लिए मन की स्थिरता का हेतु बनता है। मन की स्थिरता होने पर आत्महितकारी अध्यात्मसुख की उत्पत्ति सहज ही सुलभ बन जाती है।

- *शान्तसुधारस*

मुम्बई एक शहर है...

कई किलोमीटर तक फैला। कितनी परिधि ... कितना क्षेत्रफल ...

कितने सालों से ये शहर अपने अस्तित्व में है ?

इन सालों में कितने लोग यहाँ आए? कितने लोग यहाँ आ रहे हैं? कितने लोग यहाँ आएंगे? मुम्बई देख रहा है। इस शहर में कितनों ने जन्म लिया ? कितने जन्म ले रहे हैं ? मुम्बई देख रहा है। कितने मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ? कितने मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं ? कितने मृत्यु को प्राप्त होंगे ? मुम्बई देख रहा है। इस मुम्बई की छाती पर कितनी सड़कें बनीं ? कितनी इमारतें बनीं? कितनी दुकानें खुलीं? कितनों ने लाभ कमाया? कितने हानि उठाकर आत्महत्या किये हैं? मुम्बई देख रहा है।

न मालूम कितने जोड़ों का मिलन यहाँ हुआ होगा ?

न मालूम कितनों ने सात जन्मों तक साथ जीने की कसमें खाई थी ? न मालूम कितने शादी के पवित्र बन्धन में बंधे होंगे। न मालूम कितनों ने अपने जीवन में खुशियाँ पाई होंगी। खुशियाँ एक-दूसरे को बांटी होंगी और खुशियों में इजाफा हुआ होगा। इस हर लम्हे का मुम्बई साक्षी है।

न मालूम कितने इकरार... इजहार... तकरार... तलाक... दुराव... विछोह... मातम, रुदन, आँसू, सिसकियाँ, तड़पन, क्रन्दन, आक्रन्दन, जुदाई, विदाई, शिकवे, शिकायतें, मायूसी, उदासी, उत्साह, आनन्द, पुलकन यहाँ घटित हुई। मुम्बई देख रहा है।

इसी मुम्बई ने पेट्रोल पम्प पर नौकरी करने वाले को लाखों-करोड़ों का मालिक बनते देखा है। फुटपाथ पर सोने वाले

को सुपर स्टार बनते देखा है। आजी जी करने वाले को बादशाह बनते देखा है। कइयों की कारकीर्दी में होने वाले उतार-चढ़ाव का साक्षी है मुम्बई। सुपर स्टार को गुमनामी के अंधेरे में खोते देखा है मुम्बई ने। सत्ताओं के परिवर्तन को देखा है मुम्बई ने। आनन्द उत्सव की शृंखला को देखा है मुम्बई ने और हजारों का कत्लेआम भी देखा है मुम्बई ने। दर-दर के भिखमंगे भी मुम्बई के फुटपाथ पर हैं और हेलीकॉप्टर में उड़ने वाले भी हैं मुम्बई में। न मालूम कितनी घटनाएँ, कितने वाकये, कितनी वारदातें, कितने प्रसंग, कितनी कहानियाँ, कितने नाटक, कितने परिवर्तन इन सालों में मुम्बई ने देखे होंगे।

ये तो सिर्फ हमने मुम्बई का जिक्र किया। ऐसे ही हम महाराष्ट्र का जिक्र करें। ऐसे ही हम दक्षिण भारत के बारे में बात करें। ऐसे ही हम उत्तर भारत की चर्चा करें। ऐसे ही हम पूरे मुल्क पर प्रकाश डालें, ऐसे ही हम एशिया महाद्वीप के बारे में सोचें। हमारी सोच जब विस्तार लेती जाएगी तो ऐसे ही हमें सात महाद्वीपों के बारे में चिन्तन करना है। समुद्रों के बारे में चिन्तन करना है। उनकी जलवायु पर चर्चा करनी है। उनकी रीति-नीति पर चर्चा करनी है। संस्कृति को परखना है। संस्कारों का आकलन करना है। सभ्यताओं पर विमर्श करना है।

यह सब करेंगे तो हम पाएंगे कितना वैविध्य इस ज्ञात विश्व में भरा हुआ है। कितनी सभ्यताएँ, कितनी संस्कृतियाँ, कितने परिवेश, कितने परिवर्तन, कितने तरह के लोग इस जगत् में रहते हैं। उन लोगों के रूप-रंग, चाल, सलीका, तरीका, शिष्टाचार, तमीज, तकल्लुफ का अध्ययन करेंगे तब हमें विविधता के दर्शन अवश्य होंगे। हम अवश्य इन भाँति-भाँति की कलाओं एवं कलाकारों को देखकर आश्चर्य में डूबेंगे। अभी तो हमने सिर्फ मनुष्यों की ही बात की है। जब हम मनुष्येत्तर प्राणियों की चर्चा करेंगे तो उनमें दिखने वाले वैविध्य को समझकर हमें कैसा महसूस होगा। मनुष्येत्तर प्राणी जगत् की विशालता एवं विविधता भी हमें आश्चर्यचकित कर देगी।

पशु, पक्षी, सरिसृप, जलचर और मत्स्य की चर्चा, इनका स्वभाव, इनका व्यवहार, इनकी समझ, इनकी संवेदनाएँ तो और ही अलग अनुभव प्रदान करेंगी। इन जीवों की बोली, भाषा, संप्रेषण, शिकार और सुरक्षा के

तरीके, घर बनाने के तरीके, घर बचाने के तरीके, पेट भरने के तरीके और समूह में रहने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं, विविधता लिए हुए हैं। जब हम इस चर्चा का और विस्तारीकरण करेंगे तो हमें यह जानना होगा कि मैं जो जान रहा हूँ या मेरे वैज्ञानिकों ने जो बताया है सिर्फ इतना ही लोक नहीं है। मैं जितना जानता हूँ बस उतना ही संसार है ऐसी बात नहीं है, अपितु मेरे जानने के अलावा भी बहुत बड़ा संसार मेरे लिए अनजाना पड़ा है। मेरे वैज्ञानिक जितना शोध और संशोधन कर रहे हैं उससे कई गुना ज्यादा जगत् शोधना शेष है। मैं तो कुछ भी नहीं जान पाया हूँ। मेरे पास तो कोई कला नहीं है और न ही मेरे द्वारा अविष्कृत पदार्थों एवं तकनीकों का कोई मूल्य है। इससे भी बड़े जगत् की ओर इंगित करती है लोक भावना।

मुम्बई तो एक बूंद के समान भी नहीं है। उससे असंख्यात गुणा विस्तार वाला यह लोक है। इससे अनन्त गुणा परिवर्तन वाला यह लोक है। इससे भी अनन्त गुणा विविधताओं वाला यह लोक है। मुम्बई के निर्माण का समय अनुमानित किया जा सकता है, परन्तु लोक की आदि का ज्ञान असंभव है। मुम्बई में रहने वाले लोगों को गिना जा सकता है, पर लोक में रहने वाले जीवों को गिनना असंभव है। मुम्बई के परिवर्तनों, बदलावों का परिगणन संभव है, पर लोक के परिवर्तनों, बदलावों का परिगणन असंभव है।

मुम्बई क्यों ? हमारे सात महाद्वीपों को भी जाना जा सकता है। उसके वाशिंदे गिने जा सकते हैं। उनकी जन्म दर, उनकी मृत्यु दर, उनकी वैवाहिक दर, उनकी तलाक की दर, उनकी शिक्षा, उनका भोजन, उनका निवास, उनका भ्रमण आदि सारी बातों को हम जान सकते हैं। परन्तु लोक के स्वरूप को जानना असंभव है। उसकी विविधताओं की गणना करना अशक्य है। उनके परिवर्तनों को मापना असाध्य है। जैसे ये सारे बदलाव मुम्बई/द्वीप, समुद्र देख रहा था, है और आगे भी देखता रहेगा, वैसे ही लोक भी इन सारे बदलावों को देख रहा था, देख रहा है और देखता रहेगा।

इसने भरत चक्रवर्ती का शासन भी देखा है। इसने ऋषभ का अभिनिष्क्रमण भी देखा है। इन्द्रों का महोत्सव भी देखा है। महावीर के उपसर्ग भी देखे हैं। राम का त्याग भी इसने देखा है और लक्ष्मण का प्रेम भी

देखा है। सुभूम की लालसा को भी इसने देखा है और ब्रह्मदत्त की क्रूरता भी इसने देखी है। सीता निष्कासन इसने देखा है।

इसने महाभारत देखी है, इसने रथ मूसल संग्राम देखा है, इसने महाशिला कंटक संग्राम देखा है, इसने युधिष्ठिर को द्यूत खेलते देखा है, इसने कर्ण को दान देते देखा है ... इसने अर्जुन को गांडीव चलाते देखा है ... इसने शांतिनाथ (मेघरथ) को जांघ काटते देखा है, इसने मेतार्य की करुणा देखी है, इसने धन्नामुनि के तप को देखा है, इसने शालिभद्र की ऋद्धि को देखा है, इसने युगलिक काल को देखा है, इसने युगलियों को कर्मभूमि में बदलते देखा है, इसने इन्द्र के वज्र से चमरेन्द्र को बचते देखा है, इसने एक जीव के इतने परिवर्तनों को देखा है।

इसने क्रूर त्रिपिष्ट शिथिल मरीची महान नंदन मुनि तपस्वी और तीर्थंकर महावीर को देखा है। ये धनुवात, तनुवात घनोदधि को जानता है। ये पण्डक वन पहचानता है। यह सबकुछ देख रहा था, देख रहा है और देखता रहेगा। यह लोक स्थिति को भी देख रहा है और उत्पत्ति को भी देख रहा है। अनुग्रह को भी देख रहा है तो प्रलय को भी देख रहा है। यह सारा परिवर्तन इस लोक में निरन्तर, एक क्षण भी बिना रुके, लगातार चल रहा है। अनन्त जीव निरन्तर जन्म ले रहे हैं। अनन्त निरन्तर मरण को प्राप्त हो रहे हैं। अनन्तानन्त जीव सिद्ध क्षेत्र में विराजमान हैं और विरह काल को छोड़कर निरन्तर अनेक जीव सिद्ध होते जा रहे हैं। लोक संस्थान एक पुरुष के समान है जो दोनों पैरों को चौड़ा करके मोड़े हुए हाथों को कटि भाग पर रखकर खड़ा है। इसके पैरों की जगह पर नरक की जगह, सात पृथ्वी में 84 लाख नरकावास और उसमें असंख्यात जीव निरन्तर कष्ट पा रहे हैं, विलाप कर रहे हैं, रुदन कर रहे हैं, क्रन्दन कर रहे हैं। तड़प रहे हैं। हाय-त्राय कर रहे हैं। झूर रहे हैं। बचाओ-बचाओ का आर्त्तनाद कर रहे हैं। उन्हें मार पड़ रही है।

एक-दूसरे नैरयिक आपस में लड़ रहे हैं। कहीं परमाधामी देव उन्हें मार रहे हैं। खौलते हुए तेल में तल रहे हैं। गरम-गरम भट्टी में जला रहे हैं। कोई चमड़ी उधेड़ रहा है। कोई बोटी काट रहा है। कोई आरी से काट रहा है। कोई चमड़ी उधेड़ कर मिर्ची भर रहा है। कोई वैतरणी में फेंक रहा है। कोई कीलों पर चला रहा है। कोई गरम-गरम लोहे के पुतले से चिपका रहा है।

भयंकर अंधेरा, भयंकर दुर्गन्ध, भयंकर गर्मी, भयंकर शीत, भयंकर धुआं, भयंकर भय, भयंकर अनाथता, भयंकर करुणता, भयंकर दीनता, भयंकर अशरणता। दस प्रकार की भयंकर वेदनाएँ उस नरक के जीव को सहन करनी पड़ रही है। वह निरन्तर मृत्यु की वांछा कर रहा है। एक पलक झपकने जितने समय के लिए भी जिसे साता नहीं ऐसा नरक लोक का स्वरूप है। कम से कम दस हजार वर्ष की उनकी स्थिति है और ज्यादा से ज्यादा तैंतीस सागरोपम के प्रमाण आयु है। जन्म के साथ ही ढेर सारी वेदना प्रारम्भ हो जाती है, जो ताउम्र रुकने का नाम नहीं लेती।

वे नैरयिक जीव परस्पर भी लड़ाई करते हैं, मार-काट मचाते रहते हैं, एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं। एक-दूसरे को विक्रिया करके क्षत-विक्षत करते हैं। उनकी उस लड़ाई के कारण नरक का स्वर नगर दाह के समान कोलाहल पूर्ण प्रतीत होता है। सभी जीव निरन्तर बैर का स्मरण कर करके एक-दूसरे को कष्टप्रद यातनाएँ प्रदान करते हुए निरन्तर संक्लिष्ट परिणामों में आत्मा को डुबाते रहते हैं। हे जीव! तू लोक भावना में अधोलोक भावना का चिन्तन करते हुए आत्मा को भावित कर।

भावित कर कि मैंने भी नरक के रूप में अनन्त जन्म लिए हैं, जो वर्तमान में मुझे याद नहीं हैं। मैं रोया था, गिड़गिड़ाया भी था, तड़पा भी था और छटपटाया भी था, झूरा भी था, क्रन्दन भी किया। मैंने भी नाक रगड़ी, आंसू बहाये, बचने की जगह खोजी, न मारने की याचना की, बचने की पुकार की, घोर पश्चाताप किया, पूर्व भव को याद करके पछतावा किया। मुझे भी गुरुओं की वाणी याद आई, तीर्थंकरों के उपदेश स्मरण हुए, शास्त्रों के सूत्र स्मृति में आए। मन में माता-पिता की हिदायतें कौंधी। मेरे चित्त में भी व्रत नहीं पालने व आचार्य महाराज की अवहेलना का दृश्य उपस्थित हुआ। मैं भी दुःखी हुआ, पीड़ित हुआ और वेदना से बचने के लिए नाना उपाय ढूंढ़ता रहा, पर वहां मुझे किसी ने नहीं बचाया, न किसी ने पुचकारा और न ही किसी ने गले लगाया। किसी ने भी साता नहीं पूछी, किसी ने भी सेवा नहीं की। किसी ने न मीठे वचन बोले और न ही किसी ने पास बिठाया अपितु जितना मैं रोया उतनी ही मार पड़ी। जितना भागा उतना ही पीटा गया। जितना बचा उतना ही मुझे छीला गया। कल्पना भी नहीं करता मैं कि

मुझे करेला छीलने की तरह छीला गया। मेरे अंगों में मिर्च भरी गई। लकड़ी की तरह मुझे काटा गया। हे भगवान! ये सब एक बार नहीं अनन्त बार हुआ। एक भव में नहीं अनन्त भवों में हुआ। एक-दो पल नहीं 10 हजार से 33 सागरोपम तक हुआ। उफ...

हमारे चारों ओर हम जो कुछ भी देख रहे हैं वह सीमित है। तीर्थंकर प्रभु का ज्ञान असीम है। हम जिस लोक में रहते हैं वह मध्यलोक कहलाता है, जिसका अपर नाम तिरछा लोक भी है। यह एक राजू लम्बा-चौड़ा, 1800 योजन ऊँचा, असंख्यात द्वीप, असंख्यात समुद्रों से युक्त है, जिसमें सबसे छोटा द्वीप जम्बू नामक है जो कि सर्व मध्य में स्थित है। यह एक लाख योजन का है, जिसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार 227 योजन झाझेरी है। इससे दुगुना लवण समुद्र, इससे दुगुना धातकी खण्ड, इससे दुगुना बालोदधि समुद्र एवं इससे दुगुना पुष्करवर द्वीप है जो कि मनुष्य क्षेत्र में कहा जाता है। आधे पुष्करवर द्वीप के पश्चात् मनुष्यों का निवास नहीं होने से यही क्षेत्र मनुष्य क्षेत्र के नाम से विख्यात है। इस द्वीप के बाद इसके दुगुने-दुगुने विस्तार वाले द्वीप समुद्रों को गिनते-गिनते अन्त में स्वयंभू रमण समुद्र है जो कि आधे राजू का है। इसके बाद अलोक प्रारंभ होता है। इस मध्य लोक में मनुष्य एवं तिर्यंच का स्थान है। ढाई द्वीप के अंदर मनुष्य निवास करते हैं, जो कर्म भूमि, अकर्म भूमि एवं अन्तर द्वीप के भेद से 303 प्रकार के हैं। मनुष्यों की स्थिति जघन्य, अन्तर्मुहूर्त-उत्कृष्ट 3 पल्योपम की है। इनकी 12 लाख कोड़ी कुल कोटि है। इन मनुष्य क्षेत्रों में कर्म भूमिज के भरत ऐरावत क्षेत्रों में काल परिवर्तन होता है। तदनुसार मनुष्य प्राणि स्थिति और नाश का अनुभव करते हैं। सुख ओर दु:ख का वेदन करते हैं।

मनुष्य लोक, जिसमें हम निवास करते हैं उस पर हमें चिन्तन करना है। गर्भ के नव मास का कष्ट, मल, मूत्र, कफ, पित्त में लिप्त एक मांस का पिंड 9 महीने तक माँ के गर्भ में अंधेरी कोटड़ी में रहता है। आप सोचें आपको दस गुणे दस के कमरे में 10 दिन गुजारने हैं। वहीं मल, वहीं मूत्र, वहीं भोजन, वहीं शयन, वहीं आस्रव। सारा कार्य उसी कक्ष में करना है। कल्पना करो! क्या यह संभव हो पाएगा? परन्तु हर मनुष्य ने इस जीवन को जीया है। हर मनुष्य इस मार्ग से गुजरा है। इस कोटड़ी का वाशिंदा रहा है।

जब जन्म हो जाता है तो लोग खुशियाँ मनाते हैं, बधाइयाँ बांटते हैं, मिठाइयाँ खिलाते हैं, परन्तु वह नन्हा शिशु, उसे तो होश भी नहीं है। वह तो बोध से भी शून्य है। वह तो कुछ कर भी नहीं सकता। बोल नहीं सकता, चल-फिर भी नहीं सकता। किसी क्रिया को करने के लिए उसके पास कोई स्वतंत्रता नहीं है। यहाँ तक कि भोजन के लिए भी वह दूसरे पर निर्भर है। उसे उसके लिए भी रुदन का सहारा लेना पड़ता है।

उसकी एक ही भाषा है, एक ही अभिव्यक्ति, एक ही ध्वनि, एक ही आवाज है। उसके लिए एक ही संप्रेषण का माध्यम है और वह है रुदन। इसके सिवाय उसे कुछ भी नहीं आता है। वह असहाय है, बेबस है। बिस्तर पर पड़ा है। यदि कोई प्राणी आकर उसके शरीर को क्षति पहुँचाए तो भी बचने का कोई उपाय उसके पास नहीं है। कवियों ने इस बचपन की बड़ी महिमा गाई है। पर यह क्या वह घुटनों के बल पर चलता है, लड़खड़ाता चलता है, अंगुली थामे चलता है। उसका अपना संतुलन भी उसके हाथ में नहीं है। उसे सबकी डांट सुननी पड़ती है। हर कोई उसे डराता है, धमकाता है, आँख दिखाकर चुप कर देता है। उसका अपना कोई निर्णय नहीं होता है। उसका अपना वजूद मानने को कोई तैयार नहीं होता है।

क्या है ये बचपन?

सभी की सुनो, सबकी सहो, सबके अनुसार वर्तन करो। हंसने की इच्छा नहीं है फिर भी हंसो। रोने की इच्छा नहीं है फिर भी रोओ। खाने की इच्छा नहीं है फिर भी खाओ। ये है परवशता उस बचपन की जिसे कवियों ने महिमा मण्डित किया है। किशोरावस्था, युवावस्था कितना दुविधा पूर्ण समय होता है। मान-अपमान, मिलन-विछोह, भावनाएँ-संवेदनाएँ, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जिम्मेदारी-कर्त्तव्य, इच्छाएँ-अभिलाषाएँ सभी कुछ होते हुए भी मनचाहा नहीं हो पाता है। एक के बाद एक समस्या से दो-चार होना पड़ता है। रोज-रोज उनका समाधान ढूंढ़ना पड़ता है। सुख तो शायद एक क्षण का ही मिल पाता होगा, पर उस क्षणिक सुख का तोहफा होता है। लम्बी दु:ख की शृंखला जो उसे रुलाती तड़पाती और सताती रहती है। उम्र बीतती है। शरीर अशक्त होने लगता है। बुढ़ापा तेजी से दौड़ा आने लगता है

और धीरे-धीरे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। अब बाजुओं में वो ताकत, पैरों में वो बल, नेत्रों में वो ज्योति, वाणी में वो ओज, मन में वो उत्साह नहीं है।

हारा हुआ जुआरी जैसे दु:खी होता है, वैसे ही जवानी हारा हुआ बूढ़ा दु:खी होता है। अब पुत्र पूछते नहीं हैं। पुत्रियाँ फटकती नहीं हैं। बहू सेवा नहीं करती है। परिवार दूर-दूर रहने लगता है। वह अकेला, असहाय, निरीह अपने बचपन, युवापन को याद करते-करते दु:खी होता रहता है। यह संसार की अवस्था है। चाहे अरब पति हो या झोंपड़ी का रहवासी हो, सभी तबकों पर यह नियम समान रूप से लागू होता है। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु सबका पीछा कर रही है। एक दिन मौत अपने शिकंजे में मनुष्य को ले लेती है और उसे दुनिया से विदा लेना पड़ता है। कोई बुढ़ापे में जाता है तो कोई बचपन में भी जा सकता है। कोई भरी जवानी में चला जाता है। यह इस मनुष्य लोक किंवा मनुष्य भव का सत्य है।

इस मध्यलोक में, मनुष्य क्षेत्र में, मध्यलोक भावना का हे आत्मन् चिन्तन कर! मध्यलोक के मध्य में मेरु पर्वत है। अनकानेक वनों, उपवनों से समृद्ध यह पर्वत है, जिस पर सोना, चांदी, रत्न, पृथ्वी, वनस्पति, जलप्रपात, बावड़ियाँ, पुष्करिणियाँ और इनमें रहने वाले असंख्य-अनंत जीव तथा उन जीवों का जन्म-मरण। एकेन्द्रिय जीव जिसमें पृथ्वीकाय- मिट्टी, नमक आदि, अप्काय- पानी, तेऊ- अग्नि, वायु- हवा के जीव, वनस्पति- इसके सूक्ष्म, साधारण एवं प्रत्येक इसके पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद गिने जाते हैं। साधारण वनस्पति का स्वरूप बताते हुए कहा है कि एक सूई की नोंक जितने क्षेत्र में असंख्यात श्रेणियाँ हैं। उनमें एक-एक श्रेणी में असंख्यात प्रतर है। उस एक-एक प्रतर में असंख्यात गोले हैं। उस एक-एक गोले में असंख्यात शरीर है और एक-एक शरीर में अनंतानंत जीव अर्थात् एक सूई की नोंक जितने स्थल में अनन्तानंत जीव रहे हुए हैं, जो कि एक श्वासोश्वास जितने समय में साढ़े सतरह बार जन्म-मरण करते हैं। एक मुहूर्त्त में 65536 बार जन्म-मरण करते हैं। इस प्रकार वे कष्ट को प्राप्त करते हैं।

आचारांग सूत्र में भगवान फरमाते हैं- एक वृद्ध पुरुष जिसके अंगोपांग

शिथिल हो गये हैं, जर्जरित एवं गलित अवस्था में जिसका शरीर है, ऐसे वृद्ध पुरुष पर कोई बलिष्ठ पुरुष एक जोरदार मुष्टि प्रहार करे तो जैसे उस वृद्ध को वेदना होती है वैसी ही या उससे अनन्त गुणा वेदना एक बार के जन्म-मरण में वनस्पतिकाय के जीव को होती है। इस प्रकार की वेदना वनस्पतिकाय का जीवन निगोद के अन्दर अनेक वर्षों तक सहन करता है और प्रत्येक जीव ने अनंत बार जिसका अनुभव किया है।

बेइन्द्रिय आदि त्रस प्राणि विकलेन्द्रियों को भी अनेक यातना एवं पीड़ा झेलनी पड़ती है। रेशम का उत्पादन करने के लिए रेशम के कीड़ों को पानी में उबाल कर उसका धागा निकाला जाता है। ऐसी जानकारी मिलती है कि 1 मीटर रेशम का कपड़ा बनाने में लगभग 40 हजार कीड़ों का घात होता है। शंख, सीप, कौड़ी आदि जीवों को भी जलाकर, तोड़कर मारा जाता है, यातना दी जाती है। विश्व में न जाने कितने प्रकार के लोग हैं, जिनका भोजन ये विकलेन्द्रिय होते हैं, जो चींटियों की चटनी बनाते हैं, कॉकरोच का जैम बनाते हैं, सीप को मारकर मोती निकालते हैं, मधुमक्खियों से शहद छीनते हैं, जो केकड़ों को उबालकर खाते हैं, जो लट-इल्लियों की सब्जी बनाते हैं, जो इन जीवों को अनेक विध सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्रियों के लिए उपयोग में लेते हैं, वे जीव भयंकर पीड़ा का अनुभव करते हैं, क्रन्दन करते हैं, रोते हैं, विलाप करते हैं, आंसू बहाते हैं, पर इन जीवों की कोई नहीं सुनता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच का लोक भी अति विस्तार लिये हुए है। जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, जल के जीव, जल में रहने वाले, जल में जीने वाले, जल में बढ़ने वाले, जल में विचरण करने वाले, उन्हें भी दु:ख भोगना पड़ता है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। उससे बड़ी मछली उस मछली को खाती है। एक हजार योजन की अवगाहना वाला जलचर जो हजारों प्राणियों को एक झटके में चट कर जाता है, उसका भी त्राण नाममुकिन है। क्योंकि मछुआरे जाल बिछाकर, कांटे डालकर, जहर छोड़कर, गैस डालकर उन जीवों की हत्या करते हैं और वे निरीह प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

स्थल पर चलने वाले गाय, गधे, घोड़े, ऊँट का भव कैसा है? इन्हें

कितनी यातनाएँ उठानी पड़ती हैं। जंगल में एक घोड़ी ने शिशु को जन्म दिया और वह किसी मनुष्य के हाथ में आ गया तो वह उसे ले जाता है। तब उस बच्चे को ताउम्र माँ का विरह सहना पड़ता है, परन्तु उन मूक प्राणियों का क्रन्दन कौन सुने। किस तरह से एक-एक प्राणी को मौत के घाट उतारा जाता है। कत्लखानों में कत्ल किया जाता है। यांत्रिक कत्लखानों द्वारा एक सेकंड में हजारों पशु एक साथ काटे जाते हैं। वे पशु तड़पते हुए अपने प्राण छोड़ देते हैं।

खेचर- पक्षी, मुर्गी, कबूतर, तोता, मैना, सुरैया आदि नाना प्रकार के प्यारे-प्यारे जीव किसी व्याध के चंगुल में फंस जाते हैं और उनका यातनामय जीवन...

एक मुर्गी जिसके पैरों को पकड़ कर दोनों पंखों को केले छिलने जैसा छिल दिया जाता है, उसे कौन बचाए, गरम-गरम खौलते हुए पानी में उसे डाला जाता है। वह तड़पती है, चिल्लाती है, कसमसाती है। उसका दम घुटता है। वह त्राण पाना चाहती है, मरना नहीं चाहती। उसे भयंकर वेदना होती है पर बचाये कौन? मिक्सी ग्राईंडर में उस मुर्गी को पीस दिया जाता है। उसकी चटनी और लुगदी बनाकर शौक से खाया जाता है।

उरपरिसर्प एवं भुजपरिसर्प प्राणियों को भी सांप, चूहे, नेवले आदि जन्तुओं को भी भयंकर तरीके से वेदना दी जाती है। आचारांग सूत्र प्रथम अध्ययन में भगवान फरमाते हैं कि कई पुरुष इनसे वसा, रक्त, मांस, रुधिर, दन्त, केश, नख, रोम, हृदय, आँखें, कलेजा प्राप्त करने के लिए उनकी हिंसा करते हैं और वे प्राणी जो कर्मोदयवश तिर्यंच गति में आ चुके हैं उन्हें भयंकर झेलना पड़ता है। नाना गतियों में, नाना पर्यायों, नाना स्थानों में जीव तिर्यंच गति में निवास करता है। उसे वध, बन्धन, यातना, पीड़ा असंख्य अनंतकाल तक झेलना पड़ता है। उसी में जन्म-मरण करता हुआ वह प्राणी निरीह, असहाय, पराधीन, परवश पड़ा रहता है और अपने कर्मों का वेदन करता है। हे आत्मन्! तू तिर्यञ्च लोक भावना का चिन्तन करके निर्वेद को प्राप्त कर।

इस प्रकार 1800 योजन के मध्यलोक एवं तिर्यञ्च मनुष्य लोक के बाद अब हम ऊर्ध्वलोक को परिभाषित करेंगे।

देवता- दिव्यता जिनका स्वभाव है, भोग जिनकी रुचि है, कौतूहल जिनका साथी है, क्रीड़ा जिनकी सहचरी है, निरन्तर आनन्दमग्न, भ्रमणशील, कामरूप देवलोक का स्वरूप है। ऊर्ध्व, अधो एवं तिर्यक तीनों लोकों में जिनका स्थान है। 7 करोड़ 72 लाख भवन अधोलोक में विद्यमान है। वाणव्यंतर जो कि तिर्यक लोक में विद्यमान है। मेरु पर्वत की परिक्रमा करता हुआ ज्योतिष चक्र जो कि मध्य लोक में स्थित जिसका 110 योजन का परिक्षेत्र चर-अचर के भेद से दो प्रकार के हैं। नित्य प्रभा का प्रसारण करना जिनका स्वभाव है। जिनके कारण से दिन-रात की गणना की जाती है। उससे असंख्यात योजन ऊपर जाने पर वैमानिक देवों के स्वस्थान हैं। 12 देवलोक, 3 किल्विषी, 9 लोकांतिक, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान, 38 भेद के संख्यात-असंख्यात देवता ऊर्ध्वलोक में रमण कर रहे हैं।

वैमानिक देव की कम से कम उम्र असंख्यात वर्षों की है। उत्कृष्ट 33 सागरोपम की है, जो निरन्तर भोगमग्न है। तथाकथित दु:ख, पीड़ा, चिन्ता से मुक्त माने जाने वाले देवता अपने समय को नाट्य, नृत्य, लीला, विलास, भोग, भ्रमण और परिहास में ही बिताते हैं। एक इन्द्र अपने एक भव में करोड़ों देवियों का मालिक बनता है। उनके साथ रमण करता है। उससे तथाकथित सुख की प्राप्ति करता है। देवता नन्दनवन में रमण करते हैं, जहाँ की छटा ही निराली है। उन वृक्षों से सरगम निकलती है, संगीत फूटता है। रत्नों की बावड़ियाँ, रत्नों के महल, रत्नों के विमान, रत्नों के सिंहासन, रत्नों के शस्त्र, रत्नों के अस्त्र, रत्नों के मुकुट, रत्नों के बाजूबंद, रत्नों की पादुकाएँ, सर्वरत्नमय 32 लाख विमानों का मालिक शकेन्द्र वज्र का धारी है, जिसे मनुष्य की सम्पत्ति से मापा जाए तो उसका एक रत्न भी हमारी सारी सम्पत्ति से भारी होगा, कीमती होगा। उत्तरोतर ऊपर-ऊपर के देवताओं का वैभव नीचे-नीचे के देवताओं से अधिक है। उनकी ऋद्धि, उनका वैभव, उनका भोग, उनका तेज देखकर कम तेज, कम ऋद्धि वाले देवता ईर्ष्या करते हैं। मन ही मन जलते हैं, कुढ़ते हैं, दुखी होते हैं। छिज जाते हैं। कोई तो रत्नों को चुराकर तमस् काय में छिप जाते हैं। देवियों का अपहरण कर लेते हैं।

उनमें भी क्रोध है, अहंकार है, लोभ है, आसक्ति है, पीड़ा है। वैभव होने पर भी उनके हृदय में तृप्ति नहीं है। संतोष की धारा दूर-दूर तक प्रवाहित

होती नजर नहीं आती है। वे वैभव सम्पन्न महाऋद्धिशाली देव भी असंख्यकाल की आयु को भोग करके समय आने पर उस लोक को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उनके मुख की कान्ति मलिन हो जाती है। उनकी मालाएँ कुम्हला जाती हैं। उनके रत्नों की आभा फीकी पड़ जाती है। उनका मन देवलोक को छोड़ने के विचार मात्र से ही दु:खी हो जाता है। वे हा हा! करके रोते हैं, अन्यमनस्क हो जाते हैं, विलाप करते हैं। हा! मेरी बावड़ी छोड़नी पड़ेगी। हा! मुझे रत्न छोड़ने पड़ेंगे। हा! देवियाँ जिनके साथ में असंख्यकाल तक रहा वे सब छोड़नी पड़ेंगी। वह टप-टप आंसू बहाता है, विलाप करता है, झूरता है, तड़पता है, क्रन्दन करता है, धूजता है, हाय-त्राय करता है, फिर भी एक दिन वह अतृप्त देव उस वैभव का त्याग करके अनन्त की यात्रा पर निकल पड़ता है। जब वैमानिक देवों का भी यह हाल है तब भवनवासी व्यंतर और ज्योतिषी का तो वैभव और अवस्थान है ही कितना! हे जीव! तू ऊर्ध्वलोक भावना में देव गति का सम्यक् चिन्तन करके निर्वेद को प्राप्त हो।

सम्पूर्ण लोक के मस्तक पर परम शान्ति का अनुभव करते हुए सिद्ध भगवंत विराजमान हैं। सिद्धशिला उनका अवस्थान क्षेत्र है, जो कि सर्वार्थ सिद्ध विमान से 12 योजन ऊपर स्थित है। 45 लाख योजन के विस्तार वाली लम्बी-चौड़ी अर्ध गोलाकार सिद्धशिला है। वह मध्य में आठ योजन मोटी और क्रमश: घटती-घटती किनारे पर मक्खी के पंख से भी अधिक पतली हो जाती है। इस सिद्धशिला के 1 योजन ऊपरी भाग में 333 धनुष और 32 अंगुल जितने क्षेत्र ऊँचे और 45 लाख योजन लम्बे-चौड़े भाग में अनन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं। यही लोक का अग्रभाग है।

लोक के चारों ओर अनन्त और असीम अलोकाकाश अनादि अनन्तकाल से स्थित है। हे आत्मन्! तू अनन्त सिद्ध भगवान के स्वरूप का चिन्तन करके अपनी आत्मा को भावित कर। वे सिद्ध भगवान सम्पूर्ण दु:खों से सदा-सदा के लिए मुक्त होकर विराजमान हैं।

वहां जन्म नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दु:ख नहीं, दारिद्रय नहीं, कर्म नहीं, काम नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, भूख नहीं, तृष्णा नहीं। वहां ईर्ष्या नहीं है। वहां अहंकार नहीं है। वहां अभिप्सा नहीं है। वहां तेरा नहीं है,

वहां मेरा नहीं है, वहां तनाव नहीं है, वहां त्वरा नहीं है। वहां संताप नहीं है, वहां पाने की चाह नहीं है। वहां खोने का भय नहीं है। वहां आकुलता नहीं, व्याकुलता नहीं है।

वहां है अभय। वहां है वैराग्य। वहां है स्थित प्रज्ञता। वहां है समता। वहां है शांति। वहां है तृप्ति, वहां है आनंद। वहां है संतोष। वहां कुछ नहीं है पर सब कुछ है और संसारियों के पास सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है। वे चलते नहीं हैं फिर भी मंजिल पा ली। हम दौड़ रहे हैं फिर भी भटक रहे हैं। वे जगत के स्वरूप को जानते हैं, पर राग द्वेष नहीं करते और हम कुछ नहीं जानते फिर भी महारागी द्वेषी हैं।

इस प्रकार लोक भावना का चिन्तन करता हुआ जीव अपने को लोक की विचित्रता के सम्बन्ध में विचारशील बनाए कैसे? इस लोक में अनंतानंत जीव ठसाठस भरे हैं। क्या एकेन्द्रिय, क्या बेइन्द्रिय, क्या तेइन्द्रिय, क्या चउरिन्द्रिय, क्या पंचेन्द्रिय, क्या सन्नी तिर्यंच, क्या असन्नी तिर्यंच, नरक का स्वरूप, तिर्यंच का दु:ख, मनुष्य की विचित्रता, देवताओं का वैभव इस प्रकार विचित्रता पूर्ण लोक के स्वरूप का चिन्तन करके देखें कि प्रति समय अनन्तानन्त जीव जन्म-मरण कर रहे हैं। इस लोक के मध्य में त्रस नाड़ी है, जिसके बाह्य भाग में सिर्फ स्थावर जीवों का ही निवास है। त्रस प्राणी केवल त्रस नाल के अन्दर ही विचर रहे हैं, जो कि एक राजू चौड़ी और 14 राजू लम्बी है। इसके अन्दर असंख्यात त्रस जीव निवास कर रहे हैं। अनन्त स्थावर जीव ठसाठस भरे हैं। यह विचित्र लोक का स्वरूप है।

कहाँ एक ओर नरकावास के अन्दर नैरयिक भयंकर वेदनाओं को झेल रहे हैं और उन्हीं आन्तरों में भवनपति देवता भोगमग्न हैं। देवियों के साथ रमण कर रहे हैं। एक ओर क्रन्दन है तो दूसरी ओर नृत्य है। एक ओर भोग है तो दूसरी ओर दु:ख है। एक ओर वेदना है तो दूसरी ओर विलास है। एक ओर चमक है तो दूसरी ओर घटाटोप अंधकार है। असंख्य सूर्य आ जाए तो भी वहाँ प्रकाश संभव नहीं है। एक ओर भोजन भरा है तो दूसरी ओर अनन्त क्षुधा है। एक ओर तृप्ति है तो दूसरी ओर अनंत तृषा है। एक ओर निरुजता है तो दूसरी ओर रोग का अजायबघर है। एक ओर सौन्दर्य का भेद है तो दूसरी

ओर भयानक एवं भयावह देहयष्टि है। एक ओर चिर यौवन है तो दूसरी ओर निसहाय वार्धक्य का साम्राज्य है। कहाँ तक कहें ? कितना कहें ? कैसे-कैसे परिवेश इस लोक में देखने को मिलते हैं।

मनुष्य क्षेत्र में ढाई द्वीप में जब देखते हैं तब हमें विविधता का अनुभव होता है। एक भव में 18 संबंध एक जीव निर्मित करता है। कोई गरीब है, कोई अमीर। कोई बुद्धिशाली है, कोई निरा मूर्ख। कोई रूप सम्पन्न है, कोई कुरूप। कोई मधुरभाषी है तो कोई कर्कश गिरायुक्त है तो कोई पुण्यपुँज और कोई पापों तले दबा हुआ है। नाना पर्याय मनुष्यों की देखने को मिलती है। कोई राजा बना है तो कोई सेवक बना है। जीव की इन विचित्रताओं का चिन्तन करना ही लोक भावना है।

तू जिन्हें अपना समझ रहा है वह तेरा आज का मित्र कल शत्रु हो सकता है। आज की माता कल पत्नी के रूप में हो सकती है। आज की बहन कल माता के रूप में हो सकती है। पिता अगले भव में पुत्र और पुत्र अगले भव में शत्रु के रूप में जन्म ले सकता है। तू इस समय को समझ। केवली भगवान के ज्ञानालोक में तू लोक के स्वरूप को समझ। इस सम्पूर्ण लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र अनेक विचित्रताओं को लिये हुए है। कभी तू स्वयंभूरमण समुद्र में शैवाल के रूप में जन्मा है और कभी उसके अधिष्ठाता देव के रूप में। हर गति, योनि, पर्याय, अवस्था, क्षेत्र में तूने जन्म-मरण किया है। यदि इन भोगों से तू अब तक तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ है तो आगे भी होने की कोई सम्भावना नहीं है।

हे जीव ! ज्योतिष चक्र करोड़ों-करोड़ों तारे (1,33,950 कोटाकोटी), दो सूर्य, दो चन्द्र, 176 ग्रह, 56 नक्षत्र तो सिर्फ जम्बूद्वीप में ही मेरु के चक्कर लगा रहे हैं फिर सम्पूर्ण मध्यलोक में कितने हैं ? जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र, 6 मोटे पर्वत, 269 छोटे पर्वत, उनके 467 शिखर, वैताढ्य पर्वत की 139 श्रेणियाँ, चक्रवर्ती के जीतने योग्य 34 विजय, 10 द्रह आदि अनेक पदार्थ हैं। तब सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र की क्या कहें ? सम्पूर्ण मध्यम लोक का वर्णन कहाँ तक करें ? नि:संदेह इनकी संख्या असंख्यात ही है। यह स्वरूप तू समझ।

ऊपर ऊर्ध्व लोक के देवता...

अहर्निश भोगमय ही जिनका जीवन है फिर भी अतृप्त, असंतुष्ट। वे देव कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इन सबके अन्दर लोक के मध्य में अग्रभाग पर विराजमान सिद्ध भगवान इन सारे परिवर्तनों से अप्रभावित हैं। वे प्रतिक्रया रहित वहाँ शाश्वत रूप से विराजमान हैं। जगत् की कैसी भी घटना हो वह उन भगवंतों को विचलित नहीं कर सकती है। साथ ही साथ ढाई द्वीप में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान पृथक्त्व करोड़ केवली भगवान भी अनन्त शान्ति को उपलब्ध हो चुके हैं। क्यों ? क्योंकि उन्होंने लोक भावना के स्वरूप को भली-भाँति हृदयंगम कर लिया है। इन भगवंतों के उपदेश को सुनने वाले साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ भी भरत एरवत में विराजमान सभी तीर्थ रूप पुण्यात्माएँ इस संसार के दु:ख से दूर होने का प्रयास कर रही हैं।

हमारे ज्ञात विश्व में प्रशांत महासागर सबसे बड़ा है। 165 वर्ग किमी. फैला, 9000 मी. गहरा। वह सागर भी जब हमको इतना बड़ा प्रतीत हो रहा है तो सोचो स्वयंभूरमण कितना बड़ा होगा? सोचो मध्यलोक कितना बड़ा होगा? सोचो ऊर्ध्वलोक की लम्बाई-चौड़ाई कितनी होगी? सोचो अधोलोक और सम्पूर्ण लोक कितना विशाल होगा? भगवान फरमा रहे हैं कि एक महर्द्धिक देव डग भरते हुए इस गति से दौड़े और छ: महीने तक चलता रहे तब एक सेठ को सहस्राब्द की उम्र वाला एक पुत्र रत्न उत्पन्न होता है। वह बड़ा हो जाता है, उसके माता-पिता मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। फिर वह भी वृद्ध हो जाता है। उसकी आयु भी क्षीण हो जाती है। उसका दाह-संस्कार कर दिया जाता है। उसकी हड्डियाँ नष्ट हो जाती हैं, फिर उसकी 7 पीढ़ियाँ बीत जाती हैं, नाम गोत्र भी नष्ट हो जाता है तो भी लोक का छोर मिलता नहीं है। लोक इतना विशाल है। तब तक वह उस उत्कृष्ट गति से चलता रहता है।

प्रभु से पूछा गया कि लोक का गया भाग अधिक है या आगत भाग अधिक है। तब प्रभु फरमाते हैं कि गत भाग अधिक है, अनागत भाग अल्प है। गत क्षेत्र से अगत क्षेत्र असंख्यातवें भाग है। अगत क्षेत्र असंख्यात गुणा बड़ा है। इतना विशाल कि छ: महर्द्धिक देवता इस जंबूद्वीप के मेरु पर्वत की चूलिका के चारों तरफ खड़े होवें। नीचे चार दिशाकुमारी देवियाँ हाथ में

बलिपिण्ड लेकर जम्बूद्वीप की जगती पर चारों दिशाओं में बाहर की तरफ मुँह करके खड़ी होवें। फिर वे देवियाँ एक साथ बलिपिण्ड को बाहर फेंके। तब उन छहों देवताओं में से कोई एक देवता चारों ही बलिपिण्डों को नीचे न गिरने देवे, हाथ में ही ग्रहण कर लेवे। ऐसी ही शीघ्र गति वाले छहों देवता लोक का नाप करने के लिए छहों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे) में जावे। इस प्रकार यह लोक 7वीं पृथ्वी के यहाँ 7 राजू चौड़ा है। मध्य में एक राजू चौड़ा है, ऊपर पाँचवें देवलोक के यहाँ पर पांच राजू चौड़ा है और सिद्धशिला के यहाँ पर एक राजू फैला हुआ है। ऊपर से नीचे चौदह राजू ऊँचा है। ऐसे लोक में तू अनादिकाल से परिभ्रमण कर रहा है। यहाँ एक भव में तू 33 सागरोपम से ज्यादा तो रह ही नहीं सकता है और जब तक तू मोक्षगामी नहीं बन जाता है तब तक इन्हीं नरक-तिर्यंच गतियों के चक्कर तुझे लगाने पड़ेंगे। तू भटकता ही रहेगा। इसीलिए कवि कह रहा है-

चौदह राजु उतुंग नभ, लोक पुरुष संठाण।
तामे जीव अनादि से, भरमत है बिन ज्ञान।।

यह चौदह राजू का लोक पुरुष संठाण वाला है। यह अनादि से है। इसे किसी ने निर्मित नहीं किया है। इसका कोई निर्माता नहीं है। इसका कोई विध्वंश नहीं कर सकता है। यह शाश्वत है, ध्रुव है, नित्य है। सर्वदा स्थित रहने वाला है। अनन्त अलोक में स्थित है। पंचास्तिकाय रूप है और काल जहाँ अपना प्रभाव दिखा रहा है यह स्वत: नित्य संचालित है। अनवरत गतिमान है, इसमें धर्मास्तिकाय गति में सहायक है और अधर्मास्तिकाय स्थिति में सहायक है।

आकाश - स्थान देता है। पुद्गल ग्रहण गुण वाला है। जीव उपयोग गुण सहित है एवं काल जो परिवर्तन लाता है। इन पंचास्तिकाय एवं काल का अवस्थान इस लोक में बना हुआ है। किंवा लोक के अस्तित्व को बनाए हुए है और पांच द्रव्य भोग्य है तथा केवल जीवास्तिकाय ही भोगी है। वह सबका उपयोग करता है। वही संवेदन करता है, अनुभव करता है, प्रतिक्रिया करता है। सारा कार्य ही जीव द्रव्य का है, जिनकी संख्या अनंतानंत है। वही पढ़ता है, वही लिख रहा है। भोजन भी वह है, भोक्ता भी वह है। वही बोल

रहा है, वही सुन रहा है।

ये सारी माया जीव की है। और तो और इस जीव की लीला देखो कि एक तरफ यह अपने आत्मप्रदेशों को संकुचित करके अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में भी समाहित कर लेता है वहीं दूसरी ओर वह सम्पूर्ण लोक के समग्र आकाश प्रदेशों पर केवली समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को स्थापित कर सकता है। वह जीव जो कि परम अज्ञान दशा निगोद में पड़ा है और वही जीव सम्पूर्ण लोक के सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ज्ञाता होकर केवली पर्याय को प्राप्त कर लेता है। इस विचित्रता का कारण पुद्गल है, जिनके कारण आत्मा कर्मबद्ध हो जाती है और नानाविध पर्यायों में परिभ्रमण करती रहती है।

कहाँ निगोद की दशा, कहाँ मनुष्य का स्वरूप! कहाँ महर्द्धिक देव की आत्मा, कहाँ सर्वकर्म मुक्त सिद्ध भगवान की परम निर्मल शुद्ध चेतना! यह वैविध्य पुद्गल के संयोग-वियोग का परिणाम है। इसी कारण लोक अनादि से गतिमान है और अनन्त तक गतिमान रहेगा। पुद्गलासक्ति उसे दु:खी बनाएगी, पीड़ित करेगी, रुलाएगी, भटकाएगी, मार पड़वाएगी, आक्रन्दन करवाएगी, झूराएगी, दीन-हीन दशा में ले जाकर फेंक देगी। जहाँ इसे कोई पूछने वाला नहीं है। कोई सहारा नहीं है। कोई सांत्वना नहीं है। कोई नाथ नहीं है। कोई शरण नहीं है और वह अनन्तकाल तक निगोद में पड़ा रहता है।

ये लोक का स्वरूप है और दूसरी ओर पुद्गल विरक्ति-अनासक्ति उसे अनन्त ज्ञान युक्त, अनन्त दर्शन युक्त, अव्याबाध सुख, क्षायिक चारित्र, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरुलघु, अनन्त वीर्य सम्पन्न बनाकर चिरकाल तक परमानन्द में निमज्जित कराती है। हे जीव! लोक स्वरूप भावना का चिन्तन करके पुद्गलासक्ति का त्याग करके पुद्गल विरक्ति को धारण करके परम आनन्द को अति शीघ्र प्राप्त करो।

लोक भावना के व्यवहारिक पक्ष पर यदि हम सोचेंगे तो संसार के प्रति निर्वेद भाव उत्पन्न होता है। जीव संसार से मुक्ति के लिए प्रबल संवेग को पा लेता है। ये तो हुई आध्यात्म और मोक्ष मार्ग की चर्चा। व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में भी लोक भावना वाला व्यक्ति आनंद की वृद्धि करता है। उसका

मन विस्तार पा लेता है। संकीर्णता दूर भागती चली जाती है, फिर तेरे-मेरे का भेद मिट जाता है। वह मन में किसी प्रकार की ग्रन्थि नहीं पालता। वह सोचता है सभी मेरे हैं व मैं सभी का हूं। कोई भी पराया नहीं है। मेरा मन किसी में भी भेद नहीं करता। सभी के सुख की कामना करता है। उस व्यक्ति के मन में जातिगत-क्षेत्रगत संकीर्णता समाप्त हो जाती है। हिन्दू-मुस्लिम, सिख-ईसाई, बौद्ध-जैन, पारसी या फिर अन्य सभी में वह भातृ भाव धारण करके चलता है। ये देश मेरा है और वह देश पराया है, भारत मेरा है, पाकिस्तान मेरा नहीं है, अमेरिका मेरा नहीं है जैसी क्षेत्रगत संकीर्णता समाप्त हो जाती है। फिर क्षेत्रीय विवाद नहीं होते, जातीय दंगे नहीं होते। फिर युद्ध की आशंका समाप्त हो जायेगी। फिर शस्त्रों का निर्माण रुक जायेगा। फिर सीमाओं पर तनाव नहीं रह जायेगा। फिर फौज की जरूरत ही नहीं होगी। फिर किसी सुरक्षा बजट की जरूरत नहीं होगी। फिर राफेल घोटालों पर विवाद व राजनीति नहीं होगी। फिर किसी राजनेता की भी जरूरत नहीं होगी। फिर विपक्ष की भी आवश्यकता नहीं होगी। फिर सारा धन सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय ही व्यय होगा। फिर देश नहीं होगा सिर्फ विश्व होगा। सीमाएं नहीं होंगी। न भारत, न पाकिस्तान, न अमेरिका। दूसरे शब्दों में न भारतीय न अमेरिकन और न पाकिस्तानी। सिर्फ मनुष्य। ऐसा मनुष्य जो सारी सीमाओं से मुक्त होकर असीम आनंद में मग्न हो जायेगा। सारी मार-काट रुक जायेगी। तालिबानी, नक्सली, उल्फा, जिहाद, नाजीवाद, फासिस्ट नाम की सारी भयंकरता मिट जायेगी। सोचो वह समय कितना अच्छा होगा। ऐसा समय एक मात्र लोक भावना से ही होगा। वह समय लोक भावना के प्रभाव से ही संभव हो पायेगा।

तो आयें हम सभी लोक भावना से भावित हो जायें। मन को लोक भावना में डुबा लें। जैसे आकाश असीम होता है वैसे ही हमारा प्रेम असीम बन जाये। जैसे सागर अथाह होता है वैसे ही हमारा वात्सल्य अथाह हो जाये। ऐसा प्रेम और वात्सल्य लोक भावना में ही निहित है। हम उसे शीघ्रातिशीघ्र पाकर आनंद मग्न हों। आप शीघ्रातिशीघ्र प्रेममय बन जाएं यही मंगलकामना है।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

बोधि दुर्लभ भावना

विभिन्ना: पन्थान: प्रतिपदमनल्पाश्च मतिन:,
कुयुक्तिव्यासंगैर्निजनिजमतोल्लासरसिका:।
न देवा: सान्निध्यं विदधति न वा कोऽप्यतिशय-
स्तदेवं कालेऽस्मिन् य इह दृढधर्मा स सुकृति।।

इस कलिकाल में पग-पग पर अनेक पन्थ और अनेक मतावलम्बी हैं, जो कुतर्कों में आसक्त होकर अपने-अपने मतों को पुष्ट करने में रस ले रहे हैं। इस समय न देवता सान्निध्य-सन्निकटता कर रहे हैं और न ही कोई अतिशय प्राप्त है। ऐसे समय में जो व्यक्ति धर्म में दृढ़ है, वही पुण्यशाली है।

- *शान्तसुधारस*

एक भिखारी...

दीन-हीन अवस्था में दर-दर भीख मांगने के लिए भटक रहा है। कोई बुलाता है, कोई भगाता है, कभी भीख मिलती है कभी भूखे ही सोना पड़ जाता है। कभी रुपये, कभी कपड़े, कभी खाना, कभी पानी, ऐसे ही उसके दिन बीत रहे थे। उसका चेहरा काला पड़ चुका है। गर्मियों में भीख मांग-मांगकर चमड़ी जल गई है। सर्दियों में फुटपाथ पर सोने से चमड़ी रूखी हो गई है। कपड़े मैले हो चुके हैं। चिथड़े-चिथड़े बिखर चुके हैं। हाथ में लाठी लिये खप्पर उठाए जोर-जोर से आवाज देकर वह भीख मांग रहा है। दिनभर घूम-घूम कर उसके पैर थक चुके हैं।

चप्पल ना होने से तलवे कठोर हो चुके थे। बाल बढ़ चुके थे। उनकी लटें बन रही हैं। दाढ़ी लम्बी हो गई है। उनकी लम्बाई उसके पैर तक छू रही है। जब वह चलता है तो उसके साथ वे बाल नृत्य करते प्रतीत होते हैं। आँखों के नीचे गड्ढे पड़ चुके हैं। गड्ढों में कालिमा छाई हुई है। उसका जीवन बशर हो रहा है। दिन ढल रहे हैं, रातें बीत रही हैं। सप्ताह जा रहे हैं। महीने दौड़ रहे हैं। साल लद रहे हैं और उसका जीवन भीखमय हो चुका है।

उठते भीख, सोते भीख, चलते भीख, फिरते भीख, उसकी नस-नस में भीख घुस चुकी है। उसका रोयां-रोयां भीख का अभ्यासी हो चुका है। उस भिखारी के गले में एक ताबीज बंधा हुआ था। वह बरसों से था। जब उसके पिताजी मरे तभी उन्होंने उसके गले में ताबीज डाल दिया था कि बदलते समय में ये ताबीज मेरे पुत्र की रक्षा करेगा।

उस भिखारी को एक ज्ञानी व्यक्ति मिलते हैं। वह उस हालत में भिखारी को देखकर आश्चर्य व्यक्त करते हैं। उस भेंट में वे कहते हैं कि हे मित्र! तू भिक्षु नहीं है, तू भिखारी नहीं है, दीनता तेरा स्वभाव नहीं है, दरिद्रता तेरे लिए नहीं है। तू तो ऋद्धि सम्पन्न है। महिमा मंडित है। तेरे पास तो अकूत निधि है और इस अवस्था में तेरा भीख मांगना मुझे नहीं रुच रहा है। मेरा मन तुझसे राजी नहीं है। एक बात और सुन ले कि मेरा आकलन शत-प्रतिशत सत्य है। उसमें कोई संशय मुझे नहीं है। मैं नि:संदेह कहता हूँ कि तू ऐश्वर्यशाली है।

वह दीन-हीन भिक्षु उस महात्मा की बात सुनकर खिलखिलाकर हंसने लगता है। वह हंसी को पूर्ण करके ज्ञानी पुरुष की आँखों में आँखें डालकर पूछता है कि आप क्यों मेरा मजाक बना रहे हैं। मेरा मजाक उड़ाने का आपको कोई अधिकार नहीं है। मैं कहाँ भूपाल ? मैं तो भिखमंगा हूँ। दीन, हीन, गरीब, दरिद्र, कंगाल, फकीर और आप हैं कि कुछ भी बोले चले जा रहे हैं। उस भिक्षु की बात को सुनकर ज्ञानी पुरुष गंभीर हो जाते हैं और उसका हाथ पकड़कर देवी माँ के मंदिर में मूर्ति के सामने ले जाते हैं। माँ के समक्ष उसके गले का ताबीज वहाँ पड़े एक पत्थर की चोट करके खोलते हैं। जैसे ही वह ताबीज टूटता है वैसे ही उस मंदिर में जल रहे दीप की रोशनी में उसमें से निकलने वाला पत्थर जगमग करने लगता है। उसकी सप्तरंगी किरणों से भिखारी की आँखों में चमक आ जाती है।

अब ज्ञानी पुरुष खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं। ज्ञानी पुरुष की हंसी देखकर भिखारी से भूपाल बना वह व्यक्ति हैरान हो जाता है और उस ताबीज को ज्ञानी पुरुष को देता है। तब फिर एक बार ज्ञानी पुरुष ताबीज को तोड़ते हैं। अब उसमें एक नक्शा मिलता है, जिसे देखकर वह और भी बड़ी निधि को पा सकता है। अब तक उस भिखारी किंवा भूपाल को भरोसा नहीं था, पर अब उसे भी ज्ञानी की बातों पर एतबार होने लगा है। वह उन पर प्रतीति करने लगा। उसकी श्रद्धा दृढ़ होने लगी। यही है बोधि दुर्लभता।

वह भिखारी और कोई नहीं हमारी जीवात्मा है, जो दीन-हीन दशा

में पड़ी है। अनादिकाल से मिथ्यात्व दशा में वह स्वयं के बोध से बुद्ध नहीं, स्वयं के स्वरूप से अनजान है। स्वयं से बेखबर है। बस भीख मांग रही है, भटक रही है। अनेक गतियों, योनियों, पर्यायों, स्थानों पर जा रही है, रो रही है, तड़प रही है, वेदना झेल रही है, मार खा रही है। जैसा मिल रहा है उसी में अपने को फंसा रखी है यह जीवात्मा।

अभी तक इसे अपने स्वरूप का बोध नहीं हुआ है। इसीलिए बोधि को दुर्लभ बताया है। प्रथम तो ये जीवन अनादिकाल से अनेक गतियों में भटका। उसमें सर्वाधिक काल अब तक उसका तिर्यंच गति में रहा था। एकेन्द्रिय की सुषुप्त दशा में जहाँ कोई भी इन्द्रिय विशेष सक्रिय नहीं है। कल्पना करो एक ऐसे व्यक्ति की जिसके कान, आँख, नाक, जीभ कुछ भी नहीं है। वह पड़ा है। इससे भी बदतर दशा एकेन्द्रिय जीव की होती है। एक सूई की नोक जितने क्षेत्र में अनंत जीव हैं। एक शरीर में अनन्त जीव हैं। एक अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रदेश में अनंत जीव ठूंस-ठूंसकर भरे हैं। ठसाठस भरे हैं। निरन्तर जन्म-मरण कर रहे हैं। एक सांस में अनेक बार जिनका जन्म-मरण होता है। उस दीन-दु:खी, त्रस्त, पीड़ित अवस्था में उस जीव को बोध की संभावना कहाँ है। कह-सुन भी नहीं सकता। वह बोल भी नहीं सकता। वह देख भी नहीं सकता और ऐसी अवस्था में इस जीव ने अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणियाँ निकाली हैं।

कभी यह जीव किसी हजार योजन यानी कई लाख किलोमीटर गहरे समुद्र के तल में पड़ता है। कभी धनोदधि में पड़ता है। कभी लोकान्त में काई के रूप में पड़ता है। कभी सूक्ष्म निगोद के रूप में पड़ता है। वहां उस अवस्था में उसका बोध शून्य प्राय: है। आगे इस जीव ने पृथ्वीकाय में असंख्यात काल बिताया है। अप्काय में असंख्यात काल बिताया है। अग्निकाय में असंख्यात काल बिताया है। वायुकाय में असंख्यात काल बिताया है। अनंतानंत बार जन्म-मरण किया है।

एक ऐसा आदमी जो वेंटिलेटर पर लगा है। जिसके शरीर के एक-एक छिद्र में नली लगी हो, ऑक्सीजन पर हो। इस अवस्था में क्या वह सुन

सकता है? क्या उसे बोधि प्राप्त हो सकता है। क्या उसकी क्षमता है प्राप्त करने की? नहीं, ठीक वैसे ही एकेन्द्रिय की पर्याय परम अजाग्रत, परम सुप्त, परम जड़ अवस्था और उस अवस्था में अनंतकाल रहकर जब यह जीव अनंत-अनंत कर्मों की निर्जरा कर लेता है तब कहीं जाकर उसे बेइन्द्रिय का पर्याय प्राप्त होता है। अनंत गुणा पुण्य एकत्रित होने पर तेइन्द्रिय की योनि प्राप्त होती है। उससे अनंतानंत गुणा पुण्य के बाद मन की प्राप्ति होती है। इस जीव ने अनंत बार पंचेन्द्रिय की पर्याय को प्राप्त किया है, परन्तु बोधि को प्राप्त नहीं किया। वह जीव पंचेन्द्रिय अवस्था को पाकर भी नानाविध योनियों में भटका है।

कभी यह जीव घोर नरक में गया था, जहाँ उसे किसी भी बुद्ध पुरुष का सान्निध्य असंभव है। वह तत्त्वों का श्रवण नहीं कर सकता है। वह नारक जीव उस घोर स्थान में जाकर अनवरत वेदना को झेलता है, निरन्तर भयंकर कष्टों का अनुभव करता है। उसे परम दु:ख की अवस्था से गुजरना पड़ता है। अनंत गुणा वेदना के अन्दर उसे सद्बोधि की प्राप्ति असंभव है। वह अनेक असंख्य वर्ष बिताकर उस नरक योनि की पंचेन्द्रिय पर्याय को पाकर भी कुछ बोधिलाभ नहीं कर सकता है। तदनन्तर वह तिर्यंच की योनि में जाता है, जहाँ वह जलचर, स्थलचर आदि पांच तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की योनि में उत्पन्न होता है तो वहाँ भी बोधि प्राप्त होना असंभव है।

प्रथम तो वह किसी भयंकर जंगल आदि में उत्पन्न होता है। वहाँ उसे ऐसे बोधि प्रदाताओं का सान्निध्य भी सुलभ नहीं होता और दूसरी ओर वह क्षुधा, तृषा आदि वेदनाओं से इतना त्रस्त रहता है कि उसे बोधि के बारे में चिन्तन करने का भी अवसर नहीं मिल पाता है। समुद्रों में रहने वाले जीवों को भी मुनियों के दर्शन असंभव प्राय: होते हैं और कदाचित् हो जाए तो भी बोधि होना असंभव होता है। अनन्त-अनन्तकाल में जब जीव के किसी पुण्य का सुसंयोग होता है तब वह जीव अपने इर्द-गिर्द किसी भावितात्मा अनगार को पाकर बुद्ध हो जाता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। ऐसा अवसर किन्हीं-किन्हीं पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होता है। किसी-किसी नाग को ही

तीर्थंकर प्रभु के वचन श्रवण करने को मिलते हैं। कोई विरला ही मेढक होता है जो प्रभु का नाम, गोत्र श्रवण करके जाति स्मरण ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। कोई विरले जीव ही होते हैं जिन्हें स्वयं तीर्थंकर प्रभु नवकार मंत्र सुनाकर अन्त समय में संबल देते हैं। कोई-कोई तिर्यंच जीव ही होते हैं जो प्रभु के समवसरण में बैठकर मिथ्यात्व तिमिर का नाश करके समकित बोधि को उपलब्ध होते हैं।

हालांकि मनुष्य श्रावकों से तिर्यंच श्रावक असंख्यात गुणा है, परन्तु वह तिर्यंचों का अनंतवा भाग ही है। हम चिन्तन करें, यह जीव भव-भवान्तर में तिर्यंच पर्याय के अनेक भव करके भी बोधि को प्राप्त नहीं कर पाता है। यह बोधि दुर्लभता का स्वरूप है। तिर्यंच भयग्रस्त हैं इसलिए बोधि दुर्लभ है। तिर्यंच क्षुधाग्रस्त हैं इसलिए बोधि दुर्लभ है। तिर्यंच तृषित हैं इसीलिए बोधि दुर्लभ है। तिर्यंच समझ की कमी के कारण बोधि को उपलब्ध नहीं हो पाता है। फिर पंचेन्द्रिय में देव पर्याय जहाँ अकूत वैभव, सुख, साधन, फैलाव, चमत्कार, ऋद्धि, चकाचौंध और इन सबके चलते आकंठ वैभव में डूबे देव कहाँ बोधि को प्राप्त कर पाते हैं। वे इतने आसक्त हैं कि उन्हें बोधि दुर्लभ हो जाती है। उनके पास समझ है पर समय नहीं है।

वे इस कदर विषय लालसाओं और उनकी संपूर्ति में उलझे रहते हैं कि दूसरा कुछ सोचने का अवकाश ही नहीं रह पाता है। सामान्य अवस्था में भी देवों के पास बहुत वैभव है, इसके बावजूद कई देव चोरी करके अपने वैभव को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक अप्सराएँ उनके पास हैं तिस पर वे दूसरे देवों की अप्सराओं पर कुदृष्टि डालकर दंड पाते हैं। और तो और वे अपने से ही विक्रिया करके अपने द्वारा निर्मित अप्सराओं का ही भोग करते हैं। यह उनकी भोग वृत्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। वे देव रोज तीर्थंकर भगवान के दर्शन कर सकते हैं। रोज समवसरण में जा सकते हैं। रोज जिनवाणी का रसपान कर सकते हैं, रोज चरण वन्दन कर सकते हैं। रोज साक्षात् तीर्थंकर प्रभु की चरण सन्निधि में जिज्ञासा-समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

दर्शनों को करके अपने कर्मों की उत्कृष्ट निर्जरा कर बोधि बीज को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु भोग विलासों की आसक्ति, गृद्धि, तृष्णा, लालसा, लालच इन सबकी युति के कारण वे अपने को बुद्ध नहीं बना पाते। उन्हें समकित बोधि सुलभ नहीं होती है और असंख्यात काल जो कि बहुत लम्बी अवधि है; वह भोगेच्छाओं की पूर्ति में ही बीत जाती है। उस गृद्धि की पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँच जाती है कि वे देव मरकर पृथ्वीकाय में उत्पन्न हो जाते हैं, जहाँ बोधि अशक्य है। वनस्पति में चले जाते हैं जिनका बोध पाना मुमकिन नहीं है। वह पुण्य से प्राप्त देव पर्याय था, जिसमें ऋद्धि, द्युति, समृद्धि का अकूत भण्डार था। वह चूक गया, नष्ट हो गया, खो गया और वह महर्द्धिक देव पतित हो गया। जीव को नरक भव का दु:ख बोधि प्राप्त नहीं करने देता है। देव भव का सुख जीव को बोधि प्राप्त नहीं करने देता है। तिर्यंच भव की अज्ञता उसे बोधि नहीं करने देती है।

यह जीव अनादि अनन्त संसार का परिभ्रमण करते हुए दु:ख, वेदना और पीड़ा का अनुभव करते-करते जैसे पर्वतीय नदी का पत्थर गोल हो जाता है, वैसे ही यह जीव भी शुभ परिणाम वाला बनता है। अनेक भवों के बाद उसे मनुष्य का भव प्राप्त होता है, पर वह अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न होता है। ऐसे क्षेत्र में जहाँ पर उसे कभी मुनियों का संयोग ही नहीं मिलता है। प्रभु वाणी का श्रवण ही नहीं होता है। ऐसा संयोग ही नहीं बनता जिससे कि वह बोधि प्राप्त कर सके। मनुष्य जन्म प्राप्त होने के पश्चात् भी अनार्य क्षेत्र बोधि में बाधक है। आर्य क्षेत्र मिल जाए फिर भी उत्तम कुल की प्राप्ति होना और दुर्लभ है। ऐसी जाति जिसका रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार तीर्थंकरों की वाणी के अनुरूप हो, प्रभु वाणी के अनुकूल हो, दयावान हो, उदार हो, भाविक हो। ऐसी जाति में जन्म ले जहाँ उत्तम पुरुषों का समागम होता है। देवता भावना भाते हुए चिंतन करते हैं कि हे प्रभु! हमें उत्तम कुल, जिनवाणी भक्त परिवार में श्रावक के घर उत्पन्न करना।

यदि ऐसा न हो सके तो कम से कम उनके घर नौकर के रूप में ही जगह देना, जिससे कि हम गोचरी आदि के निमित्त पधारे हुए मुनिराजों के

दर्शन कर सकें। उनके मुखारविन्द से मांगलिक श्रवण कर सकें। महत्त्व उत्तम कुल का है। यह उपयोगिता श्रेष्ठी कुल की है। यहाँ धर्म सुलभ होने की संभावना है। मनुष्य जन्म मिला और आर्य क्षेत्र मिल गया फिर ऐसे परिवार में जन्म ले लिया जो आमिष भोजी हो, मद्यपायी हो, रात्रि भोजी हो, यतना का ध्यान नहीं रखता हो, जो बिना छाना पानी पीता हो, जो धर्म के प्रति द्वेष भावना रखता हो, साधु, उत्तम पुरुषों की अवमानना करता हो। होटल, क्लब, जुआ जहां स्टेटस सिंबल हो। लेट नाइट पार्टी जहां शान समझी जाती हो। अल्प वस्त्र वाली उद्‌भट पोशाकें धारण करके जहां की महिलाएं इतराती हों। पर स्त्री गमन, रखैल रखना पैसे वाले अपनी जरूरत मान बैठे हों। टूर पर जाते हुए 'लड़कियां' साथ ले जाना आम बात हो। जहां पिता-पुत्र और पोता सभी व्यभिचारी हों। माता-पुत्री, पुत्रवधु गैरों से संबंध बनाने में गुरेज न करती हों। मुंह पत्ती, कच्चा पानी, लिलौती त्याग, पर्यूषण आराधना, पर्व तिथि की पालना, आयंबिल पुराने जमाने की बात समझी जाती हो। सलवार-साड़ी आदि सादे वस्त्र पहनने वालों की मखौल उड़ायी जाती हो। साधु से परहेज रखा जाता हो। गुरु महाराज के फरमाये नियमों की धड़ल्ले से धज्जियां उड़ाई जाती हों। कितना लिखूं, कहां तक लिखूं। मन दुखी है। हाथ कांप रहे हैं। कलम चलने को तैयार ही नहीं है। जहां पर भाई, भाई की पत्नी के साथ अनाचार ... जहां भाई-बहन भी ...

नहीं। बस। अब और नहीं। अब नहीं लिखा जा रहा। रुकता हूं यहीं। आपको सोचने को मजबूर करता हूं कि ये सब कुछ यदि आपके जीवन में है तो क्या आप बोधि को सुलभ बना पायेंगे। ऐसे क्षेत्र, सुदूर प्रांत, जहां साधु क्या साधु की छाया भी नहीं दिखे ऐसी जगह कई श्रावक व्यापार के उद्देश्य से गए हैं। क्या वे बोधि पा लेंगे? क्या वे सुपात्र दान का लाभ ले पाएंगे? क्या वे गुरुदेव की मांगलिक सुन पाएंगे? क्या वे गुरुदेव के चरण स्पर्श का लाभ ले पाएंगे? क्या उनके घर पर गुरु महाराज के पवित्र चरण कमल पडेंगे? क्या बचपन या शादी के समय ली गई समकित को सुरक्षित रख पायेंगे? बोधि पाना, दुर्लभ बोधि को बचाना महा दुर्लभ है। हम सोचें कि

मनुष्य बन गए, जिन शासन पा लिया, साधु संगत मिल गई, ये पुस्तक भी आपके हाथ आ गई, इसमें लिखा एक-एक वाक्य आपने पढ़ लिया फिर भी बोधि नहीं आई तो क्या? फिर भी बोधि के लिए अश्रु धारा नहीं बही तो क्या? फिर भी परमात्मा के प्रति अनुराग, गुरु समागम, चारित्र भाव, सामायिक, संवर, स्वाध्याय आदि शुभ अनुष्ठानों के प्रति अहो भाव, राग भाव, श्रद्धा भाव पैदा नहीं हुआ तो क्या?

ऐसे कुल में जन्म लेने पर भी उसे बोधि प्राप्त होना दुर्लभ है। धन्य हैं वे परिवार जहां रात्रि भोज त्याग है। धन्य हैं वे परिवार जहां कंद-मूल सेवन का त्याग है।

धन्य हैं वे परिवार जहां पीने के लिए प्रासुक पानी उपयोग में लेते हैं। धन्य हैं वे परिवार जहां नवकारसी से दिन की शुरुआत होती है। नवकार जहां उठते ही पढ़ा जाता है। सामायिक जहां नियमित होती है। पर्व तिथियों पर विशेष आराधना होती है। जहां सचित भोजन त्याग होता है। जहां छोटी वय के नव दम्पति शील व्रत का जाव जीव पालन करते हैं। ऐसे भी कई जोड़े हैं जिन्होंने विवाह के पश्चात एक बार भी सह शयन नहीं किया है। धन्य हैं वे कुल जहां ऐसी आत्माएं निवास करती हैं। धन्य हैं वे परिवार जहां भोजन से पूर्व भावना भाई जाती है कि मेरे भाग्य खिले जो मुनिराज मेरे घर आंगन पधारें और मुझे आहार बहराने का लाभ देवें। धन्य हैं वे परिवार जहां भाई-भाई प्रेम से रहते हैं। छोटा भाई, बड़े भाई को प्रणाम करता है। देवरानी, जेठानी के चरण स्पर्श करती है। सभी मिलकर माता-पिता की सेवा-भक्ति करते हैं।

इसलिए उन्हें धन्य कहा जा रहा है कि जहां ऐसा होता है वहां धर्म वृद्धि होती है। धर्म का विकास होता है। संस्कार बने रहते हैं। कुसंस्कारों का प्रवेश निषिद्ध हो जाता है। पाप पलायन कर जाते हैं। सामूहिक परिवार से कुल परंपरा एवं धर्म सभी सीखते जाते हैं। जीवन में आचरण करते जाते हैं। ये सारे उपाय द्रव्य धर्म को कहते हैं, दर्शाते हैं। जब द्रव्य धर्म जीवन में आ जाता है तो भाव धर्म स्वत: आ जाता है। तब बोधि सहज-सुलभ हो जाती

है। तब पाप में प्रवृत्ति ही नहीं होगी किंवा लज्जा वश पैर पाप में फिसलने से बच जायेगा। एकल परिवार में कोई रोक-टोक नहीं है, किसी प्रकार का कोई नियम नहीं। सभी अपनी मर्जी के मालिक होते हैं। अकेलेपन में न मालूम कैसे-कैसे कुकृत्य कर बैठते हैं। अपने मन को फिसलने से नहीं बचा पाते क्योंकि कोई नेतृत्व नहीं है। एकांत के परिणाम से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी धर्म भ्रष्ट हो गए तो आज के युवक एवं युवतियां एकल परिवार में मन को कैसे स्वच्छ-निर्मल बना रख पाएंगे। आप कहेंगे कि ये बातें बोधि दुर्लभ में क्यों कर रहे हैं तो उसका जवाब है कि पहले मार्गानुसारी के गुण होंगे तब बोधि प्राप्ति होगी तो मार्गानुसारी की प्राप्ति के पश्चात बोधि सुलभ होगी अन्यथा मार्गानुसारी के अभाव में बोधि असंभव है। इन व्यवहारिक बिंदुओं के बोधि में सहायक होने से चर्चा योग्य है। हम बोधि प्राप्त करें और बोधि में सहायक उत्तम कुल के महत्व को समझें और शीघ्रातिशीघ्र कुलीन बनें। ऐसा परिवार जहाँ जन्म घूंटी में मांस दिया जाता हो, खून पिलाया जाता हो, पर्वों के दिनों में मांस भोजन में पुण्य समझा जाता हो, जिनके देव भी मांस-मदिरा का प्रसाद मांगते हों, जिनके गुरु भी पतित चारित्री और स्वच्छंदी हों, ऐसे कुल में उत्पन्न होकर मनुष्य भव पाया भी तो क्या।

इसलिए उत्तम कुल प्रार्थनीय है। उत्तम कुल की प्राप्ति के पश्चात् पंचेन्द्रियाँ परिपूर्ण होना आवश्यक है। तभी वह जीव उत्तम कुल का लाभ उठा पाएगा। सरोग शरीर और अपूर्ण इन्द्रियाँ, इन दो बलिष्ठ अलाभ के कारण जीव, धर्म श्रवण नहीं कर सकता है। उसके लिए मनुष्य भव मिलना न मिलना एक सामान है। रोगी जीव, मुनियों को देखकर भी कुछ हासिल नहीं कर पाता है। वह अपने भावों का उत्थान नहीं कर पाता है। गौतम स्वामी के दर्शन करके भी मृगा लोढ़ा को बोधि की प्राप्ति नहीं हो पाई। बहरे और अन्धे पुरुष प्रभु के समक्ष जाकर भी श्रवण एवं दर्शन का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अपंग उनके विहार का लाभ नहीं ले सकते हैं। उनके सामने जाना, उनको उठ-बैठकर विधि पूर्वक वन्दना करना भी उनके लिए असंभव-सा है। अपूर्ण इन्द्रियां और सरोगी मनुष्य दीक्षा के भी अयोग्य है। वह निरन्तर शरीर की निरोगता की चिन्ता में ही मग्न है। उसे धर्म में मग्न होने का अवकाश

अति दुर्लभता से मिल पाता है। प्रथम तो पंचेन्द्रिय परिपूर्ण और निरोगता मिलना ही दुर्लभ है। कदाचित् इनकी प्राप्ति हो भी जाए तब भी उनका सम्यक् उपयोग करना और भी दुर्लभ है।

आप एक परम रोगीष्ठ पुरुष की कल्पना करो। एक ऐसा पुरुष जिसके शरीर में कैंसर है, बीपी है, शुगर है, रक्त की कमी है, दमा है, आधासीसी सिरदर्द है, पार्किंशन्स है। ऐसी अनेक बीमारियाँ उसके शरीर में हैं। एक वाक्य में कहें तो वह बीमारियों का अजायब घर है। अब वह कहां से बोधि प्राप्त करेगा। कहाँ से भाविक बनेगा ? कहाँ से आत्म जागरण कर पाएगा ? सोचो... विचारो...

आप ऐसे प्राणी के बारे में सोचो जिसका हृदय जन्म से विकृत था। हार्ट फैलियर था। वह व्यक्ति क्या आराधना कर पाएगा? असंभव, अशक्य। हम चिन्तन करेंगे तो हमें निरोगता की दुर्लभता ध्यान में आने लगेगी। वैसे ही हम सोचें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसके शरीर के अवयव परिपूर्ण नहीं हैं। आँख नहीं है, श्रवण शक्ति नहीं है, गूंगा है, लूला है, लंगड़ा है। वह धर्म को कैसे आराधन कर पाएगा ? कैसे जिन हितकर प्रभु के वचनों को हृदयंगम कर पाएगा। इन चार (आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रिय, निरोगता) के बाद पूर्णायुष्य की प्राप्ति दुर्लभ है। मनुष्य भव मिलकर भी यदि पूर्ण आयु नहीं प्राप्त हुई तो क्या वह सम्यक् आराधना कर पाएगा ?

इसीलिए भगवान देशना प्रारंभ करने के साथ ही प्रथम संबोधन आयुष्मान करते हैं। हे आयुष्मान जम्बू ! क्यों ? क्योंकि आयु लम्बी होने पर ही वह सही दिशा में लम्बे समय तक गति कर पाएगा। आयु दीर्घ होने से ही लम्बे संयम की आराधना संभव है। कोई जीव आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, इन्द्रियाँ प्राप्त करके भी बालवय में ही काल कर जाए अथवा गर्भ में ही काल कर जाए तो उसकी पूर्व उपलब्धियाँ कुछ भी लाभ नहीं दे पाएंगी। इसीलिए पंचम परिबल दीर्घ आयु की प्राप्ति होना दुर्लभ है। इन पाँच प्रधान परिबलों के लाभ के पश्चात् भी क्या जीव बुद्ध हो जाता है ? क्या फिर उसे सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है ? क्या फिर तो वह सही मार्ग को पाया समझे ?

ठहरो! इतने जतनों के बाद इस अकूत संपदा को प्राप्त करके भी उसके मन में सद्धर्म को समझने की जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती है। वह जानना ही नहीं चाहता है। उसकी मति का अंधकार इतना सघन होता है कि वह सत्समागम की इच्छा ही नहीं करता है। हे जीव ! तू चिन्तन कर। इन पाँचों की प्राप्ति के बाद तू आत्मा के स्वरूप के बारे में चिन्तन करता है? क्या इसके बाद तो तू निज को शोधने का प्रयास करता है ? क्या इसके बाद भी तुझे कभी ये प्रश्न उद्वेलित करता है कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा क्या अस्तित्व है ? मेरा क्या वजूद है ? मेरी क्या अवस्थिति है ? क्या कभी विचार आता है कि मेरा अन्त क्या है ? क्या कभी विचार आया कि मेरी आदि क्या है ? क्या कभी यह विचार आया कि जगत में इतना वैविध्य क्यों है ? क्या कभी विचार आया कि मैं भी परिपूर्णता को प्राप्त कर परमात्म पद को प्राप्त कर सकता हूँ ? सोचा कभी, विचारा कभी ? कभी आलोडन किया ? कभी निज को झकझोरा ?

नहीं, नहीं, नहीं!

मिथ्यात्व के अंधकार में ग्रस्त पुरुष को ये बातें समझ में ही नहीं आती हैं। इनके प्रति जिज्ञासा ही उत्पन्न नहीं होती है। यह परम दुर्लभ अंग है। बोधि दुर्लभता के संदर्भ में हमें बोधि के स्वरूप को भी समझना आवश्यक है कि बोधि अर्थात् जिन धर्म पर श्रद्धा करना बोधि है। जिन प्रणीत धर्म अर्थात् ऐसे पुरुषों की वाणी जो राग-द्वेष रहित है, निर्दोष है, कर्मलेप से रहित है। ऐसे पुरुष जो कुछ भी फरमाएंगे वह आत्म हिताय ही होगा और सर्वश्रेष्ठ ही होगा। उस धर्म को समझना बोधि है। उस धर्म पर श्रद्धा करना बोधि है। मनुष्य भव प्राप्त करके भी यह जीव कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में जुड़ा रहता है। उन पर ही श्रद्धा करता है। अन्यतीर्थिकों की सेवा करने के कारण उसे सम्यक् बोधि सुलभ नहीं हो पाती है।

कदाचित् उसे बोधि का अवसर उपलब्ध भी होता है फिर भी वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के सदृश धर्म को नहीं समझ पाता है। वह धर्म सुनकर भी नमुची प्रधान के जैसे मुनि द्वेषी बन जाता है। गोशालक के जैसा प्रभु

प्रत्यनीक बन जाता है। जमाली के जैसा, तीर्थंकर की आशातना करने वाला होता है। वह कमठ बनकर प्रभु को प्रताड़ित करता है। वह संगम बनकर जिनेश्वर को यातना देता है। वह धर्म विद्रोही बनकर भारी कर्मा बनता जाता है।

हे जीव! तू चिन्तन कर। धर्म श्रवण करने के पश्चात् भी तुझे बोधि प्राप्त नहीं हो पाती है। तीर्थंकर प्रभु का साक्षात् सान्निध्य मिलने पर भी तुझे बोध (श्रद्धा) नहीं हो पाती। यही बोधि दुर्लभता है। अनन्तानंत पुण्य के पुष्कल संचय से जीव बोधि प्राप्ति हेतु उपर्युक्त अनुकूलताओं को प्राप्त कर लेता है, पर धर्म स्वीकार नहीं कर पाता है। जीव को श्रद्धा दुर्लभ बतलाई है। उसके अनन्तर श्रद्धा अनुसार आचरण और भी दुर्लभ है। जीव धर्म पर श्रद्धा करके भी तद्नुसार जीवन नहीं बना पाता है।

वह इस कदर प्रमत्त बना हुआ है कि धर्म आचरण करने का साहस ही नहीं जुटा पाता है। उसकी इन्द्रिय रामिता और आराम तलबी इतनी अधिक रहती है कि वह धर्म में पराक्रम नहीं कर पाता है। उसे भोग रोक लेते हैं। उसे अहंकार रोक लेता है। उसे भय रोक लेता है। उसे आलस्य रोक लेता है। भोगासक्ति में फंसकर ही श्रेणिक नवकारसी नहीं कर पाते हैं। अहंकार के कारण ही बाहुबली देरी से कैवल्य बोधि को प्राप्त करते हैं। आलस्य के कारण ही शालिभद्र संयम में विलम्ब कर देते हैं और भय के कारण ही किसान मुनि दीक्षा लेकर भी छोड़ देते हैं। परिषहों से घबराकर पुंडरिक पतित पावन बने। उपसर्गों से भाग कर ही आद्रक असंयमी हो गये। मोह भाव के कारण ही बलराम को संयम लेने में विलम्ब हुआ। ये धर्माचरण में बाधक तत्त्व हैं। इस प्रकार जीवात्मा समय को प्रमाद के अन्दर गंवा देती है। उसे यह ख्याल नहीं आता है कि मेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, मेरे बाल सफेद हो रहे हैं, मेरे कान की शक्ति क्षीण हो रही है, मेरी नेत्र ज्योति मंद पड़ रही है, मेरी घ्राण इन्द्रिय शिथिल हो रही है, मेरी रसनेन्द्रिय का पाटव खत्म हो रहा है और मेरा पूरा शरीर बल को गंवा रहा है। प्रतिपल चूक रहा है, ढीला पड़ता जा रहा है। इस देह की नश्वरता को देखकर भी मैं प्रमाद कर रहा हूँ। बोधि को प्राप्त नहीं हो

रहा हूँ। प्रचुर पुण्य एवं प्रबल पुरुषार्थ से ये (1) पंचेन्द्रिय जाति (2) पर्याप्त पर्याय (3) संज्ञी अवस्था की प्राप्ति जीव को हो पाती है। वह भी सीमित काल के लिए ही प्राप्त हुई है।

जीव लगातार 8 भव से ज्यादा मनुष्य का भव प्राप्त नहीं कर सकता है। पृथक्त्व करोड़ पूर्व + 3 पल्योपम उत्कृष्ट काल मनुष्य गति की प्राप्ति का है। उसके बाद उसे गति बदलनी पड़ेगी। आगे ज्ञानीजन फरमाते हैं कि 1000 सागरोपम का काल ही पंचेन्द्रिय पर्याय का है। उसके बाद हे जीव ! तुझे विकलेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त करना ही पड़ेगा। आगे प्रभु फरमाते हैं कि- हे आत्मन् ! तू चिन्तन कर, 2000 सागरोपम अत्यल्प कालावधि ही त्रस पर्याय की है। उसके बाद तुझे स्थावर में जाना ही होगा। उसके पश्चात् तेरा पतन निश्चित है।

हे जीव! तू चेत। हे जीव! तू जागृत हो जा। हे जीव! तू बोधि को प्राप्त कर। प्रमाद का त्याग करके समय का सदुपयोग करते हुए अपने पुरुषार्थ को जागृत कर। यदि इस अल्पतम समय में तूने बोधि प्राप्त नहीं की तो तुझे निगोद में जाना पड़ेगा। वहाँ जाकर अनन्तकाल तक भी पड़ा रहना पड़ सकता है। यदि बोधि को प्राप्त कर लिया है तो उसका संरक्षण करना, उसका जतन करना। जैसे रत्नों का संरक्षण जौहरी करता है, वैसे ही बोधि (श्रद्धा) का संरक्षण कर, क्योंकि 14 पूर्वधारी महात्मा भी निगोद की यात्रा पर चल पड़ते हैं। 11वें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त वीतरागी भगवान भी पतित होकर मिथ्यात्व के अंधकार में डूब जाते हैं। रथनेमि जैसे चरम शरीरी जीव भी वासना में बह जाते हैं। चरम तीर्थंकर की आत्मा भी मरीची के भव में श्रद्धा से पतित हो जाती है स्थूलभद्र का साथी मुनि संयम से गिर गया और एक बार बोधि पतन के बाद हो सकता है अनन्तकाल प्राप्त न हो। फिर से अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़े, यातना झेलनी पड़े, पीड़ा सहनी पड़े। हे आत्मन्! तू बुद्ध हो जा और अपने द्वारा उपलब्ध बुद्धत्व को सुरक्षित रख ले तो ही तेरी जीत है। बोधि के योगक्षेम के अनेक उपाय भगवान ने फरमाये हैं।

स्तुति स्तवन करने पर जीव सुलभ बोधि होता है।

थव-थुई मंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभं जणयइ

परभव में शीघ्रता से धर्म की प्राप्ति होना, धर्म समझ में आना।

पाँच कारणों से जीव सुलभ बोधि होता है।

पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभ बोहियत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा-अरिहंताणं वण्णं वयमाणे, जाव विवक्क तव बंभचेराणं देवाणं वण्णं वयमाणे।।

इस प्रकार परम हितकारी बोधि को जानो। जैसे वह भिखारी नहीं जानने के कारण दीन-हीन अवस्था में था वैसे ही जीव भी निगोद में चला जाता है, नरक में पड़ा रहता है, तिर्यंच के दु:ख भोगता है। अनन्त सुख रूपी संपदा उसके आत्मारूपी ताबीज में छिपी है परन्तु वह उससे अनजान बना है। वह आत्मा भिखारी बना हुआ रो रहा है, हाथ फैला रहा है, याचना कर रहा है और यह सब सिर्फ इसलिए कि उसने बोधि को प्राप्त नहीं किया है।

जैसे उस भिखारी को ज्ञानी पुरुष मिले वैसे ही हमें गुरु का सान्निध्य मिला है। परमतारक गुरुदेव हमें अपने स्वरूप का बोध करा रहे हैं। हमारी जानकारी में वह अमूल्य निधि दे रहे हैं, परन्तु जीव ऐसा, कि फिर-फिर गिर जाता है। जीव फिर-फिर भूल जाता है। जीव फिर-फिर प्रमादी होकर उस बोधि को खो देता है। हे जीव! इस बार संकल्प कर मैं बोधि को वमन नहीं करूंगा। मैं उसको खोने नहीं दूंगा। उसका क्षेम करूंगा। परम उपकारी गुरुदेव द्वारा प्रदत्त बोधि का संरक्षण होता है सद्आलंबनों से, सद् अनुष्ठानों से, अहोभाव से, प्रसन्न भाव से, श्रद्धा भाव से, गुरु के वचनों पर अंध श्रद्धा भाव से, जो कि आज तक मेरे जीव ने नहीं की है।

अगर कर लेता तो आज इस संसार में नहीं होता। अनन्त भवों में अनन्त बार मैंने संयम लिया था। अनन्त बार जिनवाणी सुनी थी। गुरु का आश्रय प्राप्त किया था। परन्तु ...

उसका संरक्षण नहीं किया। उसकी आराधना नहीं की जिससे कि अब तक मैं संसार भ्रमण कर रहा हूँ। मैं इस भव में इन सारे श्रेष्ठतम संयोगों को उपलब्ध हो गया हूँ। न मालूम किन जन्मों के पुण्य से मनुष्य जन्म मिला

है। न मालूम किन जन्मों के पुण्य से उत्तम कुल मिला है। न मालूम किन जन्मों के पुण्य से ऐसे माता-पिता प्राप्त हुए हैं और न मालूम किन जन्मों के पुण्य से ऐसे परम पवित्र आत्मा पूज्य गुरुदेव प्राप्त हुए हैं। न मालूम ये किन जन्मों का सुकृत उदय में आया है। न मालूम ये किन जन्मों के तप का फल है कि ऐसे भव दु:खमोचक, आत्महित चिन्तक गुरुदेव प्राप्त हुए हैं। अबकी बार मैं बोधि की आराधना करूंगा। निश्चित करूंगा। अब मैं संसार में नहीं भटकूंगा।

जैसे प्लेन में चढ़ने के लिए टिकिट चाहिए, विदेश जाने के लिए वीजा चाहिए, ड्राइविंग करने के लिए लाइसेंस चाहिए, वैसे ही भव संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बोधि आवश्यक है, परम आवश्यक है। हे जीव! तू अनन्तकाल से कुदेव गुरु धर्म का सेवन कर रहा था। तूने यह भव प्राप्त किया है। अब इस भव में मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काया शुद्धि से प्रभु की आराधना कर ले। फिर तू देखेगा कि यह बोधि एक चमत्कृति की सर्जिका है। यदि तूने इसी एक भव में भी आराधना कर ली तो 15 भव के अन्दर तू सर्व दु:खों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाएगा। अनन्त जन्म तूने अबोधि में बिताए हैं, कुबोधि में बिताए हैं, परन्तु यह एक भव तू बोधि का बिताकर देख। एक भव तू आराधना करके देख। अनन्त भव तूने संसार का होकर देखा है अब एक भव तू परमात्मा का बनकर देख। अनन्त भव तू भोगों में रमा है इस एक भव में तू शुभ योगों में रमण करके देख। अनंत भव असंयम में जीया, एक भव संयम का जीकर देख। अनंत भव स्वच्छंद होकर देख लिया, एक भव गुरु छंद, प्रभु छंद बनकर देख। अनंत भव राग में रह कर देख लिया, एक भव वैराग्य में जीकर देख। अनंत भव वासना में जी लिया, एक भव भक्ति का जीकर देख। अनंत भव अन्यों का होकर देख लिया, एक भव आत्मा का होकर देख। अनंत भव अन्यों के लिए जीकर देख लिया, एक भव आत्मा के लिए जीकर देख। इसका रसास्वादन करके देख, इसे पीकर देख, और इसे जीकर देख। इसमें रमकर देख। तुझे कितना आनन्द मिलेगा।

हे जीव! इस बोधि की उपादेयता को समझ। अगर कोई महादातार

मुझसे कहे कि मांग क्या चाहिए तो मैं सिर्फ बोधि ही मांगूंगा। वह सब कुछ देने को तत्पर बनेगा तब भी मैं सिर्फ बोधि ही मांगूंगा। जैसे कठोपनिषद में वाजस्रवा के पुत्र नचिकेता ने यम से आत्मा के विषय में जिज्ञासा प्रस्तुत की, कितना भी प्रलोभन देने पर नचिकेता विचलित नहीं हुआ, आत्मज्ञान रूप बोधि के लिए सन्नद्ध रहा, वैसी ही लालसा हम सब में भी बोधि के प्रति हो। संसार की भयावहता को समझ और स्वयं के पुरुषार्थ को जागृत करके परम पराक्रम फोड़ करके बोधि लाभ को प्राप्त कर और इस परम हितकारिणी बोधि के दाता पूज्य गुरुदेव की आराधना कर, उनकी पर्युपासना कर, उनके वर्णवाद कर, उनको मन, वचन, काया से सुख उपजाने का प्रयत्न कर। उनका अनुग्रह तेरे भीतर अहोभाव की निर्मिति करेगा। वह अहोभाव तेरे परिणामों को वर्धमान बनाएगा। वे वर्धमान बने परिणाम दर्शन सप्तक का क्षय करने वाले बनेंगे और तू क्षायिक समकित को प्राप्त कर लेगा। ऐसी बोधि जो एक बार प्राप्त होने के पश्चात् पुन: जाती नहीं है, जो सदा-सर्वदा आत्मा के साथ रहेगी। अनन्तकाल तक आत्मा का साथ वह समकित नहीं छोड़ेगी। इसलिए पूज्य गुरुदेव की आराधना करो, उनके वचनों के अनुसार वर्तन करो, उनके गुणों से आत्मा को भावित करो। इस काल में तीर्थंकर हमारे समक्ष नहीं हैं, परन्तु तीर्थंकर के सदृश गुरु कलिकाल में तीर्थंकर का बोध कराते हैं और भवी जीवों को भवसागर तिरने का मार्ग फरमाते हैं। हे जीव! बोधि दुर्लभता को गुरुचरणों के आश्रय में आकर के सुलभता में परिवर्तित करके अपनी आत्मा का परमहित संपादन कर। इसीलिये कहा है-

धन जन कंचन राजसुख, सब ही सुलभ कर जान
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

धर्म भावना

पालय पालय रे! पालय मां जिनधर्म!
मंगलकमलाकेलिनिकेतन! करुणाकेतन! धीर!
शिवसुखसाधन! भवभयबाधन! जगदाधार! गभीर!

हे मंगलमय लक्ष्मी के लिए क्रीड़ागृह! हे करुणा के प्रतीक हे धीर! हे मोक्षसुख के साधन! हे संसार के भयों का निवारण करने वाले! जगत् के आधार और गम्भीर जिनधर्म! तू मेरी रक्षा कर, रक्षा कर, रक्षा कर।

- *शान्तसुधारस*

धर्म भावना

एक पेड़ हरा-भरा, पत्र-पुष्पों से सुशोभित, फलों के दबाव से झुका-झुका है। हरितिमा के कारण उसकी कान्ति कृष्णता लिए हुए है। कई एकड़ तक फैला... उसकी छाया में अनेक राहगीर आराम करते... चरवाहे भेडों को रखते... ग्वाले गायों को चरने छोड़कर उसके नीचे नींद ले लेते। बच्चे उसके नीचे लुका-छिपी खेलते, बड़े उसकी मजबूत शाखाओं पर झूला डालकर झूलते। नवविवाहित अथवा प्रेमी युगल उसके नीचे घंटों बिता देते। बुजुर्गों को उसकी छांह रुचती, महिलाएं उसके आंगन में भरपेट बातें करतीं। अनेक प्रकार के पक्षी उस पर घोंसला बनाकर आनन्दमग्न रहते।

तोता, मैना, कोयल, पपीहा, मोर, चकवा, तीतर, कौआ के कलरव से वह पेड़ गूंजता। प्रात: उनके जाने पर पेड़ों की पत्तियाँ, टहनियाँ हिलती हुई ऐसी लगती हैं मानो उन्हें विदाई दे रही हों और सांझ उनके लौटने पर मचल उठती हैं मानो बरसों बिछुड़े प्रिय मिले हों। जैसे माँ अपने पुत्र को पाकर मुदित हो जाए या मित्र अपने मित्र से मिलकर जैसे मस्त हो जाता है, वैसे ही वह वृक्ष...।

उस गाँव के सबसे वृद्ध व्यक्ति भी उसके नीचे खेला करते थे, जिनकी वय आज 100 साल के करीब थी। वे कहते थे कि उनके दादाजी भी उसके नीचे खेला करते थे। इतना पुराना वह वृक्ष उस गाँव का देवता बन गया था। महिलाएँ पर्वों के दिनों में उसको पूजती थीं, राखी बांधती थी, तिलक-छापे, सिन्दूर, दीपक, अक्षत द्वारा उस महावृक्ष का अर्चन किया जाता था। वह वृक्ष कितना पुराना था नहीं मालूम और नहीं मालूम कि उस वृक्ष

के साथ कितने बीज और उस दिन बोए होंगे। कितने बीज भूमिसात् हुए होंगे ? कितने बीजों ने अपने को मिट्टी पलीत किया होगा ? परन्तु कुछ ही पौधे का रूप ले पाये होंगे। कुछ थोड़े और बड़े हुए होंगे और वे आज नहीं हैं। उनका वजूद नष्ट हो गया है। वे नेस्तनाबूद हो गये हैं। वे अपने को आँधियों से बचा नहीं पाए। वे अपने को तूफानों में टिका नहीं पाए। उनका संरक्षण माली द्वारा नहीं किया गया अथवा जंगली पशुओं से उनका अस्तित्व महफूज नहीं रह पाया जिससे वे नष्ट हो गये। आज उनका कोई नामोनिशां इस सृष्टि में नहीं है। क्यों एक वृक्ष इतना बड़ा हो गया, महावृक्ष बन गया और क्यों एक शिशु अवस्था में ही नष्ट हो गया? क्यों एक जन-जन का पालक बन गया और क्यों एक स्वयं को भी बचा नहीं पाया? क्यों एक हजारों का शरणगाह बन गया और क्यों एक गुमनामी के अंधेरे में गुम हो गया?

क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों ?

गहराई से सोचने पर एक बात ध्यान में आती है कि एक बीज अपनी जड़ें गहरे-गहरे और गहरे ले जाता गया और दूसरा वह गहराई नहीं प्राप्त कर पाया। एक ने अपनी जड़ों को जमीन के भीतर बहने वाली जल की शिराओं से जोड़ लिया और दूसरा ऐसा करने में सक्षम नहीं हो पाया। एक बारिश पर निर्भर रहा और एक निज की जड़ों पर। वह वृक्ष आत्मनिर्भर बन गया और सृष्टि का सत्य है कि आत्मनिर्भर ही टिक पाता है, जम जाता है। अपना अस्तित्व बनाए रखता है। वृक्ष विज्ञ कहते हैं कि वृक्ष जितना ऊपर दिखता है लगभग उतना ही नीचे उसकी जड़ें भी जाती हैं। जितना ऊपर बढ़ता है उतना वह अपने को नीचे भी गहरा-गहरा और गहरा करता चला जाता है। जो वृक्ष जितना गहरा चला जाता है वह उतना ही चिरायु होता है। वह उतना ही समृद्धशाली बनता चला जाता है। वह उतना ही वैभवयुक्त बनता चला जाता है। क्योंकि वही भीतर बहने वाले जल से निज को जोड़ पाता है।

बस यही है धर्म भावना...

एक जीव परम जागृत चेतना वाला है, केवलज्ञानी है। तीर्थंकर भगवान के रूप में है, छत्र धारण किये हुए है। चंवर ढुलाए जा रहे हैं। देव

दुंदुभि बज रही है। करोड़ों सूर्य के सदृश आभामण्डल है। एक योजन गामिनी दिव्य ध्वनि है। अनन्त इन्द्रों जितना बल है। अनुत्तर विमानवासी देवों से भी अधिक रूप सम्पन्न है। देवता मुकुट नमाए खड़े हैं। इन्द्र स्तुति कर रहे हैं। पुष्पों की वृष्टि हो रही है। समवसरण का निर्माण किया जा रहा है। तीन रत्न स्वर्ण रजत के कोट बने हुए हैं। देव, मनुष्य, तिर्यंचों की 12 प्रकार की परिषद है, जिनकी देशना सभी जीव अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं। चूहा अपनी भाषा में समझ रहा है। बिल्ली अपनी भाषा में जान रही है, तोता अपनी और मोर अपनी भाषा में समझता है।

यह वचनातिशय है। देवता उन्हें जमीन पर पैर नहीं रखने देते हैं। वे जहाँ चरण रखते हैं वहाँ पर स्वर्ण कमलों की रचना की जाती है। जिनका एक भी प्रवचन खाली नहीं जाता है। समकित बोधि, देशविरत बोधि, सर्वविरत बोधि, कोई एक तो प्राप्त करता ही है। जो अनन्तज्ञान सम्पन्न है, जो अनन्त दर्शन युक्त है, जो अनन्त सुखों में लीन है, जो त्रैलोक्य पूज्य है, जो इन्द्रों द्वारा वंदित है, असुरों द्वारा अर्चित है, मुनियों द्वारा महित है। जिनकी चरण सन्निधि प्राप्त करके अनन्तानन्त जीव मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं। अनन्तानन्त जीव सन्मार्ग को उपलब्ध हुए हैं। अनन्तानन्त निज का आत्मिक विकास, आन्तरिक विकास करते हैं। ये सब कैसे सम्भव हो सकता है। कैसे ? कैसे वे अपने इस वैभव को उपलब्ध हो पाए ? कैसे उन्होंने उच्चकोटि की आत्मऋद्धि उपलब्ध की ? कैसे वे इस उच्च शिखर पर पहुँचे और कैसे सदा सर्वदा काबिज रहने वाले हैं ?

चिन्तन प्रज्ञा कहती है कि उन्होंने अपने को धर्मभावना में गहरा उतारा था। ध्यान की गहराई में जाकर उन्होंने धर्म का जल प्राप्त कर लिया था। ध्यान की गहराई के द्वारा उन्होंने अपने भीतर बहने वाले उस अप्रतिम स्रोत को प्राप्त कर लिया था, जिससे कि उन्हें बाहर के जल की (धर्म की) आवश्यकता नहीं रह गई अर्थात् उन्होंने भाव धर्म को प्राप्त कर लिया था। वे भाव धर्म को उपलब्ध हो गये। वे भाव धर्म में स्थित हो गये। वे भाव धर्म का आश्रय प्राप्त कर गये, जिससे उनकी आत्मऋद्धि निरन्तर विकसित होती रही,

बढ़ती रही और एक दिन वे भी महावृक्ष के रूप में स्थापित हो गये। वे भी तीर्थंकर पद को प्राप्त हो गये। अनन्त भव्यों के आधारभूत बन गये।

उन्होंने बाहर से पानी नहीं लिया अथवा उनका सिंचन नली से नहीं हुआ। अगर प्रारंभ में प्राप्त हुआ भी तो बाद में उन्होंने अपने को गहरा बना लिया और गहरे से गहरे बढ़ते गये। ठीक इसी प्रकार द्रव्य धर्म और भाव धर्म को समझें। एक धर्म हम ऊपर-ऊपर कर रहे हैं, दिखावे के लिए कर रहे हैं, लोक भय से कर रहे हैं। जैसे ही एकान्त मिला अथवा भय का कारण समाप्त हुआ, उस धर्म को त्याग देते हैं। उस धर्म करने का लक्ष्य मोक्ष नहीं रहता है। उस धर्म करने का लक्ष्य इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति है। उसका लक्ष्य प्रतिष्ठा पाना है। उसका लक्ष्य देवलोक प्राप्त करना है। वह आत्मलक्षी नहीं बन पाता है।

अब प्रश्न होगा कि क्या ऐसे धर्म को नहीं करना चाहिए? कहा गया है कि इस द्रव्य धर्म की आराधना करके ही अभवी जीव नवग्रेवेयक तक पहुँच जाता है। देवलोक के उत्तम सुखों को प्राप्त कर लेता है। आनन्दपूर्वक अरबों-खरबों, असंख्य वर्ष वहाँ बिताता है। जब द्रव्य धर्म का भी इतना लाभ है तो हे आत्मन्! भाव धर्म का तो कहना ही क्या? भाव धर्म तो अचिन्तय फल देने वाला है। वह इस जीव को जो कि एकेन्द्रिय में पड़ा था, निगोद में पड़ा था, तिर्यंच में पड़ा था, नरक की वेदना झेल रहा था, परमाधर्मियों की मार खा रहा था, परस्पर लड़ाई-झगड़े कर रहा था, उस गति, योनि, पर्याय से निकालता है। निकालकर किन्हीं तीर्थंकर अथवा तीर्थंकर सदृश केवली अथवा भावितात्मा अनगार के समक्ष भाव धर्म के स्वरूप को समझाता है। मोक्ष के अद्भुत सुख के बारे में जानता है। आत्मा की विलक्षण शक्तियों से परिचित होता है। उससे उसे बोधि उत्पन्न होती है और बोधि उत्पन्न होकर उसका विश्वास भाव धर्म में दृढ़तम बन जाता है। भाव धर्म अर्थात् जिसने उत्तम क्षमा को हृदयंगम कर लिया है, जिसने मृदुता को धारण कर लिया है, जिसने सत्य अक्षरश: अनुपालनीय है, ऐसी धारणा बनाई है, जिसने संयम को आत्मसात् किया है, तप जिसकी दिनचर्या बन चुकी है। ब्रह्मचर्य जिसके रग-रग में विचरण कर रहा है। सरलता जिसकी सहगामिनी है। निर्लोभता जिसके अन्तर में उतर

चुकी है।

ऐसे दस यति धर्मों को जिसने हृदय से स्वीकार किया है, आन्तरिक अनुमोदन किया, वचन से जिसकी महिमा गाई है, काया से जिसका स्पर्श किया है, जो इन सबका आचरण करते हुए किसी बोझ का अनुभव नहीं कर रहा है, उसे ये धर्म भारभूत प्रतीत नहीं हो रहे हैं। उसे किसी भी प्रकार से अमनोज्ञ नहीं लग रहा है। जो संयम में आनंदित है, जो ब्रह्मचर्य में पुलकित है, जो सुज्ञ धर्म में उर्जित है, ऐसा जिसका जीवन है, वह है भाव धर्म।

जिसका रोम-रोम धर्म में रमा हुआ है। जिसे अहर्निश एक ही ध्यान है, जिसकी सांसों में धर्म है, जिसके शयन में धर्म है, जिसके निशदिन में धर्म है, जो चले तो लगे धर्म चल रहा है, जो बोले तो लगे धर्म बोल रहा है, जो बैठे तो लगे धर्म बैठा है, जो देखे तो लगे कि धर्म देख रहा है। जहाँ दिखावा नहीं, छलावा नहीं, लोक लुभावन भावना नहीं है। वहाँ भाव धर्म है। जहाँ नकलीपन नहीं है वहाँ भाव धर्म है। जहाँ भार का अहसास नहीं है वहाँ भाव धर्म है। जहाँ जीवात्मा को धर्म सिखाना नहीं पड़ता, वहाँ धर्म टिकता है। शास्त्रों में कहा है- दिआ वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे एगओ वा परिसागओ वा गामे वा नगरे वा अर्थात वह सोया हो या जागृत हो, वह अकेला हो या परिषद में हो, वह गाँव में हो या नगर में, वह दिन में हो या रात के घने अंधेरे में। हर समय एक ही लय में रहता है, एक ही पुलकन में रहता है, एक ही संगीत में रहता है, वह भाव धर्म है।

क्या वह धर्म जीव को दिखता है?

प्रश्न स्वाभाविक है कि हम अपने तल पर देखते हैं कि हम में ये सारे तत्त्व नहीं है तो और किसी में कैसे हो सकते हैं। हमें देखना होगा उन महापुरुषों के जीवन वृत्त को, जिनका जीवन धर्म था। जीवन में धर्म एक बात है और जीवन धर्म एक बात है। हम धर्म रुचि अणगार को देखें। अहिंसा के लिए हंसते-हंसते कड़वा तुम्बा खा लिया। हम खंधकमुनि को देखें, उन्होंने चमड़ी उधड़वा ली। हम हरिश्चन्द्र को देखें, वे सत्य के लिए बिक गये। हम राम को देखें, वे वचन के लिए 14 वर्ष वन में भटके। हम गजसुकुमाल को

देखें, तेऊ की जयणा के लिए उन्होंने अपने सिर को हिलाया तक नहीं, भागे नहीं, प्रकम्पित भी नहीं हुए। हम अर्निका पुत्र को देखें, खून के बहने से अप्काय के जीवों की हिंसा हो रही है, यह सोचकर वे द्रवित हो रहे हैं।

हम देखें संयम में रत मुनियों को। वे ईर्या का शोधन करते हैं। भाषा समिति से समित वचन बोलते हैं। एषणा से प्राप्त भोजन ग्रहण करते हैं। उनका जीवन धर्म है। धर्म की आराधना पालना करते हुए प्राप्त होगा तो ग्रहण करेंगे अन्यथा अनशन कर लेंगे। हम धर्म के प्रभाव को जानें।

अन्त समय में मदन रेखा द्वारा धर्म सुनने पर युगबाहु देव बन गया।

अन्त समय में वरुणनाग नतुआ का मित्र धर्ममय होने पर देवलोक को पा गया।

नाग आठवें देवलोक में चला गया धर्म के प्रभाव से।

हिरण पांचवें देवलोक में चला गया धर्म के प्रभाव से।

हाथी राजकुमार बन गया धर्म के प्रभाव से।

मेढक देव योनि को प्राप्त हो गया धर्म के प्रभाव से।

चोर मोक्ष चला गया धर्म के प्रभाव से।

हत्यारा छः महीने की अल्पावधि में तीर्थंकर भगवान से भी पहले मुक्तिगामी हो गया।

धर्म के प्रभाव से ही चक्रवर्ती की ऋद्धि भरत चक्री ने प्राप्त की थी।

धर्म के प्रभाव से ही सम्प्रत्ति राजा का वैभव प्राप्त करता है।

धर्म के माहात्म्य को कहाँ तक गायें। जगत् में जो भी श्रेष्ठ, उत्तम और सुखद है वह जीव को धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त हो रहा है।

सांसारिक समस्याओं से लेकर आत्मिक समस्याओं का एक मात्र समाधान धर्म है।

धर्म द्वीप है, धर्म त्राण है, धर्म शिक्षण है, धर्म गति है, धर्म प्रतिष्ठा है।

धर्म के प्रभाव से शत्रुओं के बीच से व्यक्ति अक्षत निकल जाता है।

धर्म के प्रभाव से शूली का सिंहासन हो जाता है।

धर्म के प्रभाव से सर्प फूलमाला बन जाता है।

धर्म के प्रभाव से चम्पा का ताला खुल जाता है।

धर्म के प्रभाव को पूछना है तो शालिभद्र से पूछो कि दान धर्म की आराधना करने का क्या लाभ उसे प्राप्त हुआ। पूछना है तो बाहुबली से पूछो कि मुनियों की सेवा करने का क्या लाभ प्राप्त होता है। पूछना है तो भरत महाराज से पूछो कि श्रेष्ठ धर्म की दलाली का क्या फल होता है। पूछना है तो श्रीपाल और मैना सुंदरी से पूछो कि कैसे कुष्ठ नामक भयंकर रोग धर्म के प्रभाव से मिट गया और काया कंचन वर्णी हो गयी।

धर्म का हम पर उपकार जानने के लिए धर्म की परिभाषा को जानना होगा। कहा है दुर्गति में गिरते हुए जीव को जो धारण करता है वह धर्म है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि धर्म ना हो तो जीवन के लिए दुर्गति से बचना मुश्किल हो जाए। धर्म के प्रभाव से सद्गति की प्राप्ति होती है। धर्म के प्रभाव से पुण्यानुबंधी पुण्य का अर्जन होता है। वह ऐसा होता है कि धन्ना अनगार ने अपने जीवन में प्रचुर पुण्य का भोग किया, पर वे उसमें आसक्त नहीं हुए। एक समय ऐसा आया कि वे वैराग्य को प्राप्त होते हैं और दीक्षित हो जाते हैं। हम सभी जीवों को सुख प्रिय है और दु:ख अप्रिय है। हमें किंचित् भी दु:ख होता है तो उसका कारण है हिंसा। हमें किंचित् भी पीड़ा होती है तो उसका कारण है प्रमाद। धर्म हमें किंचित् भी अशोभनीय प्रतीत होता है तो उसका कारण है अयतना, जो कि अधर्म है।

यदि हम अप्रमत्त रहेंगे, यतनालीन और अहिंसक रहेंगे तो दु:ख की छाया भी हमारे इर्द-गिर्द फटक नहीं सकती। ये प्रभाव धर्म का है। धर्म अनाथों का नाथ है, अशरणों का शरण है, दीनों का दीन ए इलाही है, अरक्षकों का रक्षक है, असहायों का सहायक है। मांगने से तो हम कुछ प्राप्त कर लेते हैं परन्तु धर्म से बिना मांगे ही सब कुछ पा लेते हैं। इसीलिए कहा है-

याचे सुर तरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता रैन
बिन याचे बिन चिन्तिए, धर्म सकल सुख देन

यानी याचना करने पर कल्पतरु याचित वस्तु प्रदान कर देता है तथा

याचना करने पर चिन्तामणि मनवांछित वस्तु पूरी कर देता है, परन्तु धर्म बिना याचना के ही सकल सुख देने वाला है। आगे कहा है-

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान।।

अर्थात् सांसारिक सुख की आपूर्ति भी धर्म की आराधना से हो जाती है। श्री स्थानांग सूत्र में 10 सुख बतलाए गए हैं- (1) आरोग्य (2) दीर्घायु (3) आढयत्व (4) काम (5) भोग (6) संतोष (7) अस्थि (8) शुभभोग (9) निष्क्रमण (10) अनाबाध।

इस प्रकार धर्म की आराधना करने वाला पुरुष सांसारिक दृष्टि से भी सुखी सम्पन्न रहता है और उस वैभव में मक्खी की तरह लिप्त नहीं होता हुआ एक दिन उन सबका त्याग करके उड़ जाता है। यह धर्म का ही प्रभाव है। अधिक क्या कहें। धर्म की आराधना से उत्तमोत्तम मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, दु:ख, दारिद्र किसी भी प्रकार की समस्याओं से जीवात्मा ऊपर उठ जाती है। सदा सर्वदा आनन्दमग्न हो जाती है। हमेशा के लिए परिपूर्ण तृप्ति का अनुभव करती है। ऐसा धर्म का फल है, परन्तु हमें धर्म जटिल प्रतीत होता है। धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि-

वत्थुसहावो धम्मो - वस्तु का स्वभाव धर्म है। एक बात ध्यान में लेने की है कि किसी भी प्राणी को स्वभाव में आने में कोई विशेष पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता है। अग्नि का स्वभाव उष्णता है, जल का शीतलता है। ये सब स्वभाव है। वैसे ही आत्मा का स्वभाव है क्षमा। आत्मा का स्वभाव है विनम्रता। आत्मा का स्वभाव है सरलता और आत्मा का स्वभाव है संतोष। ये आत्मा के मूलभूत स्वभाव हैं, जिसमें आत्मा कर्मों के कारण से वर्तमान में नहीं है, परन्तु यह आत्मा के निजी स्वभाव हैं। कभी इनसे दूर हट भी जाती है तब भी पुन: इसमें स्थित हो जाती है तो इसमें स्थित होने में जटिलता कैसी? क्यों आत्मा को धर्म पराया प्रतीत होता है और अधर्म निज का प्रतीत होता है? कब वह दिन आएगा जब आत्मा को सत्य का बोध होगा और वह धर्म के माहात्म्य को समझकर अपने जीवन में उसे रमाएगा? आज आत्मा धर्म को

कठिन एवं जटिल मान रही है, परन्तु आत्मभाव में आना जगत् का सर्वाधिक सरल कार्य है। वह किसी गच्छ, पंथ, संप्रदाय के बंधन में बंधा हुआ नहीं है। वह तो गगन बिहारी विहग की भाँति उन्मुक्त है, स्वेच्छाचारी है, आनन्द निमग्न है।

आज का व्यक्ति धर्म भावना से कतराता है, घबराता है। बंधन की कोटि में मानता है, परन्तु धर्म जैसा अप्रतिबद्ध कोई नहीं है। धर्म जैसा मुक्त कोई नहीं है। पर से स्व में आना धर्म है। बाह्य भावों से आन्तरिक भावों में आना धर्म है। पुद्गलों से आत्मा में आना धर्म है। संसार से स्व में आना धर्म है। धर्म मौलिकता है। धर्म आधारशिला है। धर्म नींव है।

जैसे नींव के बिना प्रासाद का अस्तित्व नहीं है, वैसे ही धर्म के बिना सुखद जीवन का अस्तित्व नहीं है। धर्म सुखद जीवन की आवश्यकता है, मांग है। हे जीव ! पर भावों का त्याग करके निज भावों में रमण करके धर्म भावना का आस्वादन करो।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

मैत्री भावना

सर्वत्र मैत्रीमुपकल्पयात्मन्!
चिन्त्यो जगत्यत्र न कोऽपि शत्रुः।
कियद्दिनस्थायिनि जीवितेऽस्मिन्,
किं खिद्यसे वैरिधिया परस्मिन्।।

हे आत्मन्! तू सर्वत्र मैत्री की उपकल्पना कर, अनुप्रेक्षा कर। इस जगत् में मेरा कोई भी शत्रु नहीं है, ऐसा अनुचिन्तन कर। यह जीवन कितन दिनों तक स्थायी रहने वाला है? उसमें दूसरे के प्रति शत्रुबुद्धि रखकर तू क्यों खिन्न हो रहा है?

- *शान्तसुधारस*

मैत्री भावना

सारा संसार धू-धू करके जल रहा है। इस आग में सभी चराचर झुलस रहे हैं। समन्दर में रहने वाला जल भी इस अग्नि से बच नहीं पाया है। वनस्पति जीव भी इससे सूख चुके हैं। एकेन्द्रिय जीव भी इसकी तपन से बच नहीं पाए हैं। बेइन्द्रियों में भी इसका अस्तित्व देखा जाता है। तेइन्द्रिय प्राणी भी इससे त्रस्त हैं। चतुरिन्द्रिय निकाय में भी यह अध्यवसाय देखा जाता है। नैरयिक जीव तो इसी की परिक्रमा करते दृग् गोचर होते हैं। देवता भी इससे अछूते नहीं हैं। मनुष्यों में भी इसका परिमाण प्रचुरता में देखा जाता है।

ऐसा वैरभाव है अमैत्री भाव जो सर्वत्र प्रसृत है, जिसके परिहरण के लिए प्रभु ने मैत्री भाव का उपदेश दिया है। तीर्थंकर भगवंतों ने जिसके प्रतिक्रमण का उपदेश दिया है। गणधर भगवंतों ने जिसकी आराधना की है। लब्धिधारियों ने जिसका संरक्षण किया है। मन पर्याय ज्ञानियों ने जिसकी अनुमोदना की है। अवधि ज्ञानियों ने जिसकी प्रशंसा की है। मन समितों ने जिसको साधा है। वचन समितों ने जिसे सेवन किया है। काय समितों ने जिसका स्पर्श किया है, ऐसी है मैत्री भावना। ऐसी है मित्र भावना...

मित्र- एक ऐसा शब्द जिसे सुनना सबको मधुर प्रतीत होता है। एक ऐसा शब्द जो कर्ण कुहरों में जाते ही मिश्री घोल देता है। जो सर्व प्राणी जगत् को तृप्ति प्रदायक है। जो सर्व जगत् में शांति प्रसारक है। जो आनन्ददायी है। जो अमृतपायी है। ऐसी भावना का निरूपण तीर्थंकर भगवंतों ने अपने उपदेशों में किया है। ऐसी पवित्र भावना से आत्मा को भावित करने पर आत्मा के भीतर रही हुई अमित्र भावना तिरोहित हो जाती है। बैर भावना नष्ट हो जाती है। अनन्तानुबन्धी जैसा घोर कषाय पलायन कर

जाता है। बैरी पुरुष निरन्तर निज को जलाता रहता है। निरन्तर पर दोष दर्शन करके उसके प्रति बैर भाव का संरक्षण और संवर्धन करता है। यह बैर भाव एक-दो भव नहीं अनेकानेक भव तक जीवों का अनुगमन करता है।

यह बैर भाव बदले की भावना से युक्त है। यह बैर भाव बैरानुबंध का कारक है। यह बैर भाव भयंकर अशांति एवं कर्मों का उत्पादक है। इस बैर भाव के कारण से ही जीव चारों गतियों में परिभ्रमण करता है। यह बैर भाव कृष्ण आदि अशुभ लेश्याओं के कारण पुष्ट होता है। यह बैर भावना अशुभ योगों द्वारा उत्पन्न होती है। यह बैर भाव असंवृत्त जीवों द्वारा आचरित किया जाता है। इस बैर भाव के परिणाम से समरादित्य एवं अग्नि शर्मा नव भव तक गतिशील रहे। कमठ और पार्श्व का बैर भी भवान्तर तक टिका रहा। सोमिल को 99 लाख भवों के बाद भी गजसुकुमाल के प्रति बंध बैर हिंसा में प्रवृत्त कर देता है। ग्वाला प्रभु महावीर को देखकर भयंकर क्रोधाविष्ट होकर कानों में कीलें ठोक देता है। खंधक की खाल इसी बैर भाव के कारण उधेड़ी जाती है। यह बैर भाव परम घातक संसार का हेतु है।

प्रभु फरमाते हैं- इससे सावधान! हे जीव! तू बैर का अनुबंध मत कर। तू मैत्री भाव की आराधना कर। इसीलिए सूत्र उच्चरित हुआ है कि-

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे, मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झं न केणई।

मैं सभी जीवों के प्रति क्षमा भाव को धारण करता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरा प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव है। मेरी जीव मात्र के प्रति हित भावना है। मेरी सत्व मात्र के प्रति अपनत्व की भावना है। मैत्री की व्याख्या करते हुए तत्वार्थ सूत्रकार कहते हैं कि जिससे स्नेह उत्पन्न हो वह मैत्री। मिद्यतीति मित्रं स्निह्यतीत्यर्थः। स्नेहपरिणामा मैत्री। अहो! कितने ऊँचे भाव हैं। अहो! कितने श्रेष्ठ भाव हैं। मित्रता का परिणाम बताया है कि जिसके प्रति मित्रता होती है उसके प्रति हितकामना होती है। उसके प्रति कल्याण की कामना होती है। उसके प्रति मंगल की कामना होती है।

मैत्री अर्थात् जगत् के प्रति मंगल के भावों से भर जाना है। मित्रता अर्थात् जगत् के प्रति हितकांक्षिता से ओत-प्रोत हो जाना है। प्रत्येक प्राणि

के प्रति हितकांक्षा मंगलकांक्षा का भाव है मैत्री भाव! कहा है-

"मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों पर नित्य रहे।"

मेरा मैत्री भाव सभी जीवों के प्रति बिना भेदभाव के बना रहे। बिना किसी ऊँच-नीच के बना रहे। बिना किसी जातीय बंधन के बना रहे। बिना किसी क्षेत्र की परिधि के बना रहे। सब पर मैत्री, सदा मैत्री, सबसे मैत्री, यह परम उदात्त भावना है मैत्री भावना। यह श्वान चेतना के उत्तुंग शिखर से सुनी जाती है। जब कोई चेतना अपने उपरिम तल पर पहुँच जाती है तब उसके मन में परम मैत्री उत्पन्न होती है। फिर उनके मुख कमल से मेरी प्राणिमात्र से मैत्री है शब्द उच्चरित होते हैं। वह सबका कल्याण चाहता है, वह सबका भला चाहता है।

तीर्थंकर प्राप्ति के बीस बोलों की आराधना करता हुआ जीव भावना भाता है कि सभी जीवों को शासन रसिक बनाऊं अर्थात् जगत् के सारे जीव जिनशासन के रसिक बनें। सारे जीव शासन की आराधना करके स्व का हित साधन करें। वे मुनिपुंगव अपने अंदर सबके निश्रेयस् की भावना भाते हैं। उनके मन में गोशालक के प्रति भी मैत्री है। तेजोलेश्या फेंकने के बाद जब गोशालक का देहान्त हो जाता है तब गौतम प्रभु से पूछते हैं कि गोशालक की गति क्या है ? तब मैत्री भाव का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है। भगवान फरमाते हैं कि हे गौतम! गोशालक भी भवी है और वह भी मोक्ष पाएगा। यह विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र 15 शतक में है, जिसे प्रभु ने अपने मुखारविन्द से समवसरण में सभी के मध्य में किया।

ऐसा वचन बिना मैत्री भाव के किसी के मुख से निकलना अशक्य है। यह मित्रता उसकी सबके प्रति थी। गौतम के प्रति थी तो गोशालक के प्रति भी थी। अयंपुल के प्रति भी थी तो आनंद के प्रति भी। चंडकौशिक के प्रति भी तो चन्दनबाला के प्रति भी थी। सभी जीवों के मंगल प्रार्थी भगवान उस मैत्री भावना का निरूपण करते हैं। प्रथम उपदेश में अहिंसा रूप सामायिक कहा-

हे जीव! तू सोच, मैत्री भावना से रहित हृदय का चिन्तन कर। उसके हृदय में बैर की भट्टी जलती रहती है। वह बैर की भावना से प्रेरित

पुरुष किसी की भी घात करने में हिचकिचाता नहीं है। भाई-भाई का द्वेषी हो जाता है। भाई-भाई का हत्यारा हो जाता है। यह अमैत्री भाव बैर का बंध और उदीरण का कारण है। हास्य, अहं, सम्पत्ति। हंसी-हंसी में ही कोई ऐसी बात हो जाती है जो चुभ जाती है और बैर का अनुबंध हो जाता है। द्रौपदी ने अंधे के बेटे अंधे मजाक में ही कहा था, परन्तु इस एक वाक्य ने बैर का सर्जन कर दिया। यह एक हास्य बैर का सृष्टा बन गया और 1 अरब 30 करोड़ लोग 18 दिन की अल्पावधि में मारे गये। इस बैर का उद्‌भव हास्य से हुआ था। इस महायुद्ध के कारण भव्य भारत का अन्त हो गया।

इसी तरह अहं पर जब चोट पड़ती है तब भी बैर का अनुबंध होता है। यह अहं मैत्री का घातक है। एक हृदय में दो चीजें एक साथ नहीं रह सकती हैं। कहा है-

पिया चाहे प्रेम रस रखना चाहे मान

कि प्रेमरस के पिपासु हो और अहं का रक्षण करना चाहते हो, यह असंभव है। अहं बैर का प्रेरक है। अहं बैर का अनुबंधक है। अहं बैर का सर्जक है। यह परम्परा तक चलने वाला है।

वीतमय पाटन। उदायन राजा उनका पुत्र अभीची कुमार और भाणेज केशी कुमार।

राजा ने राज्य भानेज को प्रदान किया। इससे अभीची कुमार के अहं को ठेस पहुँची कि क्या मैं योग्य नहीं हूँ ? क्या मैं सामर्थ्यवान नहीं हूँ ? मुझे राज्य क्यों प्रदान नहीं किया गया? इत्यादि अति संक्लिष्ट परिणाम अभीचि कुमार के बने। वह कालान्तर में वीतमय नगर का त्याग कर देता है तथा चम्पानगरी में कोणिक राजा के राज्याश्रय में निवास करने लगता है। अनेक वर्षों तक श्रावकत्व का पालन करके अन्त में 15 दिन का संथारा करते हुए ऐसा कहता है कि मैं उदायन राजा को छोड़कर बाकी सबसे खमाता हूँ। सभी से बैर उपशमाता हूँ। सभी से मेरी मैत्री है। मेरा किसी से भी बैर भाव नहीं है। ऐसे विचार उसके भीतर अन्तिम आराधना के समय उत्पन्न होते हैं कि एक को छोड़कर सबसे क्षमायाचना करता हूँ। ऐसे परम संक्लिष्ट विचार के कारण वह मोक्षदायक देश संयम को हार जाते हैं और विराधक होकर असुर

कुमारों में आयाव नामक पाथड़े में उत्पन्न होते हैं। यह अहं से उत्पन्न अमैत्री का उदाहरण है।

सम्पत्ति से वैरानुबंध - राजगृह नगरी

कोणिक राजा, पद्मावती रानी और उनके अनुज हल विहल कुमार। हल विहल को सेचनक और हार दिया जाता है। कोणिक की तरह उन्हें राज्य नहीं मिलता है। तिस पर भी वे दो भाई तुष्ट हैं। कोणिक भी अपने कार्यों में मग्न है, पर पद्मावती को, उनके वैभव को देखकर ईर्ष्या हो जाती है। उनकी सम्पत्ति रूप हार और हाथी को प्राप्त करने की उत्कंठा होती है। वह उनसे मांगती है परन्तु वे हार एवं हाथी को कोणिक को नहीं देते हैं। इस सम्पत्ति के कारण उनका भातृभाव, मैत्रीभाव, बैरभाव में परिणत हो जाता है। भाई-भाई युद्ध करते हैं, कारण सम्पत्ति है। भाई-भाई मरते-मारते हैं, कारण सम्पत्ति है। भाई-भाई में अमैत्री है, कारण सम्पत्ति है।

सम्पत्ति के कारण न मालूम कितने मित्र शत्रु बन गये। अहं के कारण न मालूम कितने सुहृत् बैरभाव में चले गये। हास्य के कारण न मालूम कितने युद्धों का सर्जन हुआ। कितनी माताओं की गोद सूनी हो गई। इस अमैत्री भाव के कारण लाखों मांगों का सिन्दूर मिट गया, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गये। दीन-हीन अवस्था की निर्मात्री यह अमैत्री है। यह तो इस भव की बात है परन्तु यह अमैत्री गत्यन्तर में भी जीव का अनुगमन करती है। एक नैरयिक दूसरे नैरयिक को पूर्वभव के बैर का स्मरण कराके अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। लड़ते हैं, भिड़ते हैं, लहूलुहान कर देते हैं। यह अमैत्री का ही परिणाम है।

प्रभु फरमाते हैं कि यह अमैत्री अहित कारक है, अमंगल कारक है, अनिष्ट कारक है। इसलिए अमैत्री का त्याग करो। मैत्रीभाव को धारण करो। शत्रुता का त्याग करो, मित्रता धारण करो। द्वेष का त्याग करो, प्रेम मार्ग को धारण करो। यह मैत्री सर्वजगत् के लिए हो और यह मित्रता प्राणिमात्र के प्रति हो। ये प्रेम की सुगंध सकल जीव निकायों को सुवासित करने वाली हो।

इस मैत्री भाव की आराधना प्रभु का उपदेश सुनकर चण्डकौशिक नाग ने की थी। मैत्री भाव का ऋषभदेव के 98 पुत्रों ने आराधन किया था।

मैत्री भावना उदायन ने चण्डप्रद्योतन के प्रति प्रदर्शित की थी। इसके प्रभाव से चण्डकौशिक देवलोक में गया तथा 98 पुत्र मुक्तिगामी बने। उदायन अपनी दासी का विवाह चण्डप्रद्योतन से करके एक खुशनुमा सुखद मैत्री के वातावरण का निर्माण करता है।

यदि जगत् से यह एक शब्द निकाल दिया जाए तो हम शांति की कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। आज जिस तरह से राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर युद्ध हो रहे हैं इसका एकमात्र कारण बैर भाव है। लाखों-करोड़ों लोग इस बैर भाव के कारण मारे गये। हिटलर ने यहूदियों को बैर भाव के कारण मारा। औरंगजेब ने काफिर को मारकर बैर भाव की पुष्टि की। हिन्दू-मुस्लिम दंगे बैर भाव की ही देन हैं। सालों से लंबित भारत-पाक के मामले के कारण हजारों व्यक्ति मारे गये जो कि बैर वृत्ति ही है। यह बैर घातक है, मारक है, शांति हारक है, दुःख वर्धक है, तनाव कारक है, दुर्गति दायक है। कितना कहें। इस बैर के कारण ही संसार का परिभ्रमण है। इस बैर के कारण ही यह सृष्टि है।

हे जीव! बैर भाव उत्पन्न होने पर तू उसकी उत्पत्ति के कारणों का शोध कर। तू देख कि यह अमित्र भाव क्यों उत्पन्न हुआ है? क्यों तू किसी व्यक्ति के प्रति बैर भाव से भर जाता है? क्यों तू किसी को द्वेष की निगाहों से देखता है? क्यों तेरे मन में किसी भी प्राणी के प्रति नफरत उत्पन्न होती है? क्यों तेरा व्यवहार किसी के प्रति रुक्ष हो जाता है? और इन क्षणिक भावों के कारण तू बैर का अनुबंध कर लेता है। यह परम्परा क्यों निर्मित होती है।

इसका कारण है समदृष्टि का अभाव। इसके कारण जीव किसी को मित्र और किसी को शत्रु मान लेता है। परन्तु भवान्तर पूर्व की याद किसी को भी नहीं रहती है। कीर्तिधर राजा की रानी, सुकौशल नामक अपने पुत्र को बहुत प्यार करती थी। राजा दीक्षित हो जाता है और पुत्र भी उस भाव से पिता का अनुगमन करता है। इसके फलस्वरूप रानी को सदमा लगता है और वह आर्त्तध्यान में मरकर शेर की योनि में जाती है। वह पूर्व भव के पुत्र मुनि पर आक्रमण करके मार देती है। देखिए, पूर्वभव की माँ इस भव में शत्रु बन गई। इस भव में हत्यारन बन गई।

तू जब अपनी दृष्टि को जिन वचनों से परिमार्जित करेगा तब तेरे समक्ष वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि मैं किस पर प्रेम करूं एवं किस पर द्वेष करूं क्योंकि भवान्तर में इन रिश्तों की कोई विश्वसनीयता नहीं है। इस जन्म का मित्र परभव में शत्रु और इस भव का शत्रु परभव में परम स्नेही मित्र के रूप में हो सकता है। इस शाश्वत परिवर्तन को सत्य मानें और अपने मन में समता भाव की आराधना करें। मैत्री भाव की स्थापना करें, प्रेम भाव के बीजों का वपन करें। हे आत्मन्! तू ऐसा कब कर पाएगा ? जब तू सभी जीवों को (सम्मं भूयाइं पासओ) अपने समान देखेगा तो किसी के भी प्रति तेरे मन में द्वेष नहीं आएगा। फिर तू मेत्ति में सव्वभूएसु के मूर्त रूप का अनुभव कर पाएगा। वसुधैव कुटुंबकम् का विराट चिन्तन तेरे रग-रग में फैलता चला जाएगा। हे आत्मन् ! मैत्री भाव को धारण कर। तू शान्ति का आसेवन कर, बैरभाव का परित्याग कर, विषम भाव को वोसिराकर मैत्रीभाव की आराधना कर...!!!

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

प्रमोद भावना

जिह्वे! प्रह्वीभव त्वं सुकृतिसुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना,
भूयास्तामन्यकीर्त्तिश्रुतिरसिकतया मेऽद्य कर्णौ सुकर्णौ।
वीक्ष्याऽन्यप्रौढलक्ष्मीं द्रुतमुपचिनुतं लोचने! रोचनत्वं,
संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति भवतां जन्मनो मुख्यमेव।।

हे जीभ! तू पुण्यवान् पुरुषों के सच्चरित्र-उच्चारण में प्रसन्नता के साथ अनुरक्त बन। अब मेरे दोनों कान दूसरों की यशश्रुति के रसिक होकर अच्छे कान बनें। हे लोचन! तुम दूसरों की विशाल लक्ष्मी को देखकर शीघ्र प्रीतिमान् बनो। इस असार संसार में तुम सबके (जीभ, कान और लोचन) जन्म का यही मुख्य फल है।

-शान्तसुधारस

हर्ष...

यह एक ऐसा शब्द है, जिसकी प्राप्ति की वांछा जगत् के सभी जीवों को है। सभी जीव हर्षित होना चाहते हैं। सबका लक्ष्य हर्ष है। संसार की सारी प्रतियोगिताओं के केन्द्र में हर्ष है। सारी भागमभाग के मध्य में हर्ष है। हर्ष प्राप्ति के पश्चात् कुछ भी प्राप्त होना शेष नहीं रहता है। हर्षित व्यक्ति सबको रुचता है। हर्षित व्यक्ति सबके मन को हर लेता है।

अब हम हर्ष के बारे में चर्चा करेंगे। हर्ष भाव अर्थात् प्रमोद भाव, उल्लास का भाव, आनन्द का भाव, पुलकन का भाव, हार्दिक प्रसन्नता, वाचिक प्रसन्नता, कायिक प्रसन्नता। ये सब प्रमोद भाव में क्रीड़ा करते हैं। एक प्रमोद भाव को आत्मसात् कर लिया जाए तो प्रफुल्लता दौड़ी आएगी। एक प्रमोद भाव को अपना लिया तो आनन्द छाया की तरह सहगमन करेगा। उस व्यक्ति की आँखें आम आँखों से कुछ और होंगी। उस व्यक्ति की चाल आम व्यक्ति की चाल से भिन्न होगी। उस व्यक्ति का चेहरा कुछ अलग ही चमक लिए हुए होगा। उसकी दमक अद्वितीय होगी। उसका व्यवहार अपने आप में शानी लिए हुए होगा। वह जगत् से अलग नजर आएगा। ऐसा अनूठा, अनुपम व्यक्तित्व इस भूतल पर अवतरित होगा, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। वह खुशियाँ फैलाएगा। वह आनन्द बांटेगा, वह सुकून लुटाएगा।

क्या ऐसे व्यक्तित्व से मिलना चाहेंगे? क्या आप ऐसे व्यक्तित्वों की श्रेणी में अपना नाम भी जोड़ना चाहते हैं? क्या आप ऐसी कल्पना अपने बारे में कर सकते हैं ? क्या आपका

मन भी ऐसा बनने के लिए लालायित है?

यदि हाँ, तो आप भी प्रमोद भावना की आराधना करें। यदि हाँ, तो आप भी प्रमोद भावना से मुलाकात करें। यदि हाँ, तो आप भी प्रमोद भावना के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें। यकीन मानिए, आप भी वैसे व्यक्तित्व बन जाएंगे। विश्वास करिए, आप भी एक प्रमुदित पुरुष कहलाएंगे। क्या आप पाना चाहते हैं? क्या आप बनना चाहते हैं? हाँ लगता है आपका मन बन रहा है तो हमें इसके लिए तैयारी करनी होगी। हमें इसकी कीमत चुकानी होगी। हमें इसका मूल्य प्रदान करना होगा। लगता है आपकी जिज्ञासा चरम पर पहुँच चुकी है। आप जानना चाहते हैं कि कैसे मैं भी उस अनूठे व्यक्तित्व का स्वामी बन जाऊँ। हैं तैयार ?

इसके लिए सबसे पहले अपने कानों को निन्दा सुनने से रोकना होगा। हमें अपनी आँखों को दोष देखने से रोकना होगा। हमें किसी की बुराई करने के मौके पर गूंगा बनना पड़ेगा। यदि हम दोष सुनते समय बहरे, दोष देखते समय अंधे और दोष कहते समय गूंगे बन गये तो हम शीघ्रातिशीघ्र प्रमोद भाव को उपलब्ध हो जाएंगे। इसके लिए दूसरा कार्य है अपने कानों में श्रवण यंत्र लगाएं, जिससे कि धीरे से बोला गया गुण भी हम सुनने से वंचित नहीं रह जाएं। इसके लिए हमें अपनी आँखों पर माइक्रोस्कोप लगाना पड़ेगा, जिससे दूसरों के छोटे से छोटे गुण भी हमें दिख पड़ें। इसके लिए हमें विटामिन की गोली खानी पड़ेगी, जिससे हम गुणोत्कीर्तन करते हुए कभी भी थकें नहीं। प्रशंसा करते समय कभी भी ग्लानि का अनुभव न हो। अहोभाव प्रदर्शित करते समय आनन्द का अनुभव हो। ऐसा हो गया तो प्रमोद भावना आयी समझो।

अब एक बात और मैं आपकी जानकारी में देना चाहता हूँ कि इस जगत् के कठिनतम कार्यों में से एक कार्य है, दूसरों की प्रशंसा करना, दूसरों को उत्साहित करना, दूसरों को उनके गुणों के बारे में बताना, दूसरों के गुणों को देखना और उनके गुणों को देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करना। यह दुष्कर कार्य है। इसमें व्यक्ति को स्वयं के अहंभाव को हटाकर विनम्र भाव

धारण करना होता है और अपने हृदय को भावुक बनाना होता है। ऐसा करने पर ही वह दूसरे का गुणगान कर सकता है। वह दूसरे के प्रति अहोभाव व्यक्त कर सकता है।

हम अपने हृदय को प्रमोद भावना की परिक्रमा कराएं। जैसे तीर्थ की परिक्रमा करने से पापों का नाश हो जाता है वैसे ही प्रमोद भाव रूपी तीर्थ की परिक्रमा करने पर निश्चित ही पाप पलायन कर जाते हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार भाग जाता है, वैसे ही प्रमोद सूर्य के उदय होने पर ईर्ष्या रूपी अंधकार भाग जाता है। हम प्रमोद भाव की दृष्टि रखकर जगत् को देखेंगे तो जगत हमें कुछ भिन्न ही नजर जाएगा। इस जगत् में अनेक तरह के लोगों का निवास है। सद्गुणी भी हैं, दुर्गुणी भी हैं।

शायद ऐसा कहना गलत होगा। मैं कहना चाहूंगा कि सद्गुण देखने वाले और दुर्गुण देखने वाले। यहां मैं सद्गुण देखने वालों की बात करना चाहूँगा। वे ही प्रमोद भावना वाले हैं। वे सृष्टि के जीवों को देखकर प्रमुदित होते हैं। उनका सबके प्रति अहोभाव रहता है। कहा है- गुणिषु गुणाधिकेषु प्रमोदं - हर्षभाव:।

गुणियों में, गुणाधिकों में प्रमोद भाव धारण करना। हर्ष भाव धारण करना। अहो भाव धारण करना। अनन्त सिद्ध भगवान इस संसार में हैं, जिन्होंने सर्वकर्म मुक्त अवस्था को प्राप्त किया और वे लोकाग्र पर विराजमान हैं। सादि अनन्त उनकी अवस्था है। वे हमसे गुणाधिक हैं तो उनके प्रति प्रमोद भावना व्यक्त करना, उनके प्रति स्तवन का निर्माण करके अर्पित करना, उनके गुणों से जनमानस को परिचित कराना, उनके गुणों का प्रसार करना। चूंकि ये निश्चित है कि सिद्ध भगवान हमें कुछ देने वाले नहीं हैं, परन्तु उनके प्रति अहोभाव धारण करने पर हमें तो समाधि की प्राप्ति होगी ही, बोधिलाभ होगा ही, निरुजता मिलेगी। सिद्धों के बाद अरिहन्त भगवान... तीर्थंकर भगवान...

अहा! कितने अद्भुत व्यक्तित्व के धनी जिनका सानी इस संसार में दूसरा मिलना कठिन है। जिनका प्रत्यक्ष दर्शन हमें सुलभ नहीं है परन्तु

उनके चारित्र को सुनकर उनके प्रति अहोभाव धारण करना कि कैसे ऋषभ प्रभु ने एक वर्ष तक उपवास किया ? कैसे उन्होंने माँ के मोह को त्यागा? कैसे ब्राह्मी - सुन्दरी जैसी बेटियों से रिश्ता तोड़ा ? कैसे अकूत वैभव का त्याग करके मुनिचर्या धारण की ? कितने परिषह और उपसर्ग एक हजार साल तक सहन किये। मल्लीनाथ भगवान ने कैसे गृहावास में ही छः राजाओं को निर्वेद का पाठ पढ़ाया ? कैसे अरिष्टनेमि ने राजुल के प्रति ममत्व विसर्जित किया? नव भव की प्रीति का परित्याग किया। कैसे धरणेन्द्र और कमठ के प्रति प्रभु समत्व में रहे ? कैसे सात हाथ की छोटी सी काया ने इतने कष्टों को सहन किया? पैरों पर खीर उबलवाई, कानों में कीलें ठुकवाई, शूलपाणि को सहन किया, संगम को सहा। एक रात्रि में 20 उपसर्ग और उपसर्ग भी भयंकर। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि एक वज्रमुखी पिपिलिका आपकी चमड़ी को काटते हुए दूसरी ओर निकल जाए, आर-पार हो जाए। कैसी वेदना प्रभु को हुई होगी। तीव्र दारुण, कर्कश वेदना को प्रभु ने उफ किए बिना समभाव से सहा। उन गुणाधिक प्रभु को स्मरण करके अहोभाव धारण करना, अपने भाग्य की सराहना करना कि मुझे जिनेश्वर देव मिले हैं, जिनशासन मिला है, परम तारक प्रभु की शरण मैंने प्राप्त की है। ऐसे अहोभाव, प्रमोद भाव से हृदय को आप्लावित करना प्रमोद भावना है।

हमारे समक्ष आचार्य भगवन् विराजमान हैं। एक बार सिद्ध अरिहन्त प्रभु के लिए अहोभाव सम्भव है क्योंकि वे हमारे समक्ष नहीं है। हमने उनको देखा नहीं है। हमारा उनसे कोई साक्षात् संबंध नहीं है, परन्तु जो सम्मुख विद्यमान है, उनके प्रति अहोभाव धारण करना प्रयत्न साध्य है। आचार्य भगवन् के उपकारों को स्मरण करना कि यदि गुरुदेव मुझे संयम प्रदान नहीं करते, समकित नहीं देते, श्रावक व्रत नहीं देते, उत्क्रान्ति की घोषणा नहीं करते, परिवारांजलि, आगम भक्ति, गुरुकुल, 500 थोकडे, कर्म सिद्धांत, 100 गाथा नित्य स्वाध्याय, संस्कार वर्धन, ज्ञान-ध्यान, गुणोत्कीर्तन आदि की प्रेरणा नहीं देते तो मेरा जीवन क्या होता

मैंने इनमें से कितना कुछ धारण किया? अब तक जितना भी धारण

किया वह काफी नहीं है। अभी हमें और भी बहुत धारण करना है। जल्द से जल्द आदर्श श्रावक और आदर्श साधु बनना है गुरुदेव के सपनों को पूरा करना है। इसमें गुरुदेव का नहीं मेरा हित है। इसमें गुरुदेव का लाभ नहीं मेरा लाभ है। मेरे परिवार का लाभ है। मेरा जो भी अस्तित्व है, पद है नाम है, ज्ञान है, समझ है, विद्वत्ता है या जो कुछ भी मेरी उपलब्धियाँ हैं उनका एकमात्र कारण गुरुदेव हैं, जिन्होंने संयम प्रदान किया। जिन्होंने संयम के लिए प्रेरित किया। जिन्होंने संयम को दूषित होने से बचाया। जिन्होंने संसार में होने वाले सारे संकटों से सुरक्षित किया। जिन्होंने गच्छवास की उत्तम व्यवस्था दी। जिन्होंने इतने उच्च गच्छ में मुझे स्थान दिया, अपने चरणाश्रय में बैठने का मौका दिया। जिन्होंने सच्चे श्रावक का रूप बताया, श्रावक बनने की प्रेरणा दी, समता बाल संस्कार शिविरों के माध्यम से कितनों को संस्कारित किया।

ऐसे परम उपकारी गुरुदेव के उपकारों का वर्णन कैसे किया जाए?

जानना चाहते हो तो उन मुनियों को देखो जो किसी गच्छ से संबद्ध नहीं हैं। किसी शिथिल गच्छ के सदस्य हैं, जहाँ सारणा, वारणा, धारणा की परम्परा नहीं है। जहाँ न पूर्वाचार्यों की गौरवशाली परम्परा है और न ही स्वर्णिम वर्तमान विद्यमान है। पर मेरे संघ की छटा अद्भुत है। अष्टाचार्यों की परम्परा और राम गुरु का कुशल संचालन, उपाध्याय श्री राजेश मुनि जी जैसे मुनि पुंगवों का सानिध्य मिला हुआ है, जिनको सारा जैन समाज आशा भरी निगाहों से देख रहा है। जिनका ज्ञान, जिनका तप, जिनके व्रत, जिनकी सेवा भावना बहुत होने पर भी उनमें कहीं भी अभिमान दृष्टिगत नहीं होता। इतना होने पर भी अद्भुत विनय की आराधना करने वाले महापुरुष वर्तमान समय में दुर्लभ हैं। हम उपाध्याय श्री के प्रति अहोभाव को वर्धमान बनाएं। उनके द्वारा दी गई प्रत्येक प्रेरणा को सफल बनाने का प्रयत्न करें। ऐसे परम उपकृति के केन्द्र आचार्यदेव के प्रति भक्ति प्रवणता धारण करना, उनके गुणों के प्रति अहोभाव व्यक्त करना और वह हार्दिक अभिव्यक्ति ऐसी हो कि नयन भर आए, अहोभाव से छलक जाए।

गुरु के प्रति अहोभाव से निकला हुआ एक आंसू अनन्त कर्मों की

निर्जरा कराने वाला होगा। उनके दर्शन करते समय, उन्हें वन्दन करते समय एक उत्फुल्लता अपने हृदय में होवे। ऐसा भाव भीतर बहता रहे जो उनकी भक्ति से भरा हो। हे जीव! इस जगत् में गुरुभक्ति से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है, कोई विद्वत्ता नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है। जिस शिष्य ने गुरुभक्ति सीख ली उसने सभी कुछ पढ़ लिया, सीख लिया। जिसके नयन और हृदय में गुरु के प्रति अहोभाव न हो वह हृदय पत्थर के सदृश है और मोक्षगमन के योग्य नहीं है। संक्षेप में वह हृदय किसी भी काम का नहीं है।

आचार्य भगवन् के साथ-साथ संघ है। ऐसा संघ जो गुणियों का समुदाय है। ऐसा संघ जो संयमियों का समूह है। ऐसा संघ जो श्रेष्ठ आत्माओं का समूह है। जिसमें ढाई द्वीप की अपेक्षा से पृथक्त्व हजार करोड़ साधु-साध्वी विद्यमान हैं। नमो लोए सब्ब साहूणं कहने से उन सभी को नमस्कार होता है। किसी एक संप्रदाय विशेष का आग्रह प्रमोद भावना में नहीं है। प्रमोद भावना तो उदात्त विचारों का खजाना है। यह भावना परस्पर सौहार्द्र भाव एवं संप्रदाय निरपेक्ष होने की प्रेरणा देती है। वह कहती है कि गुणी पुरुष किसी एक पंथ-गच्छ से जुड़े होंगे, मेरे संघ से ही जुड़े होंगे, ऐसा नहीं है। बल्कि वे किसी भी परंपरा में हों उनके प्रति स्वत: मेरा अहो भाव उत्पन्न है। वह तेरे-मेरे की दीवार को ध्वस्त कर देता है। गुणियों को देखकर आनंदित होता है। हमें देखना है वर्तमान के समय में जो संप्रदाय विद्वेष की अग्नि प्रज्जवलित हो रही है वह हमारी प्रमोद भावना को जला रही है। मेरा साधु ही श्रेष्ठ, अन्य का साधु हीन का भाव प्रमोद भावना से भावित श्रावक के मन में नहीं होगा। वह तो गुणी पुरुष के गुणगान में सदा ऊर्जस्वित रहेगा। ऐसा नहीं कि वह किसी धर्म संघ या धर्माचार्य से नहीं जुड़ेगा। वह जुड़ेगा परंतु किसी से जुड़कर भी दूसरों के प्रति द्वेष भाव नहीं रखेगा। दूसरे संघ की दीक्षा होने पर उसे जलन नहीं होगी। दूसरे संघ में मासखमण होने पर ईर्ष्या नहीं होगी। दूसरे के वैरागियों, श्रावकों को भ्रमित नहीं करेगा। वह सदा सद्धर्म की प्रेरणा एवं प्रभावना में संलग्न रहेगा। ऐसा संघ जहाँ अनेक महात्मा संयम का पालन कर रहे हैं। इस संघ में अनेक साधु अनेक गुणों से विभूषित हैं, समृद्ध हैं। अपने इर्द-गिर्द रहने वाले साधु-महात्माओं के प्रति अहोभाव

धारण करो। कोई साल में पाँच मासखमण करने वाले हैं, कोई बेले-बेले पारणे करने वाले हैं। कोई एकान्तर व्रत करने वाले हैं, कोई एकासना व्रत करने वाले हैं। कोई काली रानी का तप कर चुके हैं, किसी ने 120 की तपस्या पूर्ण की है। किसी ने 56 उपवास किए हैं, किसी ने 51 उपवास किए हैं। कोई 32 आगमों के जानकार हैं, कोई थोकड़ों के जानकार हैं। कई कर्म सिद्धान्त में निष्णात हैं तो कई सेवा को अपना धर्म बनाए हुए हैं। कई रस परित्यागी हैं तो कई तरह के महात्मा अपने पुरुषार्थ से कर्मों का क्षय करने में लगे हुए हैं। उन सभी के प्रति भी अहोभाव धारण करना, उनका विनय करना, उनका गुणगान करना, उनकी वैयावृत्य करना, उनके संयम पालन में सहयोग करना, प्रमोद भावना है।

किसी मुनि ने वृद्धावस्था में दीक्षा ग्रहण की है। किसी मुनि ने बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण की है। किसी मुनि ने युवावस्था में दीक्षा ग्रहण की है। कार में चलने वाले कई मुनि वैभव व्यापार त्याग कर आज कंकरीली भूमि पर चल रहे हैं। महानगरों में रहने वाले आज गाँवों की सूखी बाजरी खा रहे हैं। सरकारी अफसर रहे हुए महात्मा आज अपने विनम्र भाव को बढ़ा रहे हैं। गरमा-गरम भोजन करने वाले, स्वादिष्ट, मनोज्ञ और मनोनुकूल आहार ग्रहण करने वाले मुनि आज रूखा-सूखा आन्त-प्रान्त भोजन समभाव से मर्यादा पूर्वक सेवन कर रहे हैं। उन सबके प्रति अहोभाव धारण करना, उनके गुणों का कीर्तन करना, प्रकटीकरण करना, प्रमोद भावना है।

श्रावक-श्राविका का जीवन भी गुण सौरभ से महका हुआ होता है। जिनशासन में ऐसे माता-पिता भी हैं, जो बच्चों को जन्म से ही धर्म के संस्कार देते हैं। एक जुड़वा भाई के बारे में सुना कि बचपन से उन्होंने रात्रि भोजन नहीं किया। एक दूसरे भाई ने 10 साल की उम्र में रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। ऐसे अनेक बालक-बालिकाएँ हैं जिनको माँ ने बचपन से ही धोवन पानी पिलाया है। कच्चा पानी जिन्होंने जिन्दगी में कभी नहीं पिया। एक युवक है जो बैडमिंटन खेलता है। मैच खेलने वह देश-विदेश में सालभर में कई दौरे करता है, परन्तु वह अन्तर्भावना से शाकाहार का पालन कर रहा है।

जिनशासन की महिमा अद्भुत है। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, नौकरी जाए तो जाए परन्तु श्रावक शराब नहीं पीते हैं। एक श्रावक बड़े स्तर के नेता थे, परन्तु पाँच सामायिक किये बगैर मुँह में पानी तक नहीं डालते थे। ये नेताजी अपनी माता के परमभक्त थे। ऐसे कई श्रावक हैं जो गाँव में मुनियों के आने पर जब तक उनकी गोचरी नहीं हो जाए तब तक वे भी कुछ नहीं खाते हैं। मुम्बई चातुर्मास में एक युवारत्न ने चार महीने व्यापार का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया। कई श्रावक-श्राविकाएँ ऐसे हैं जिन्होंने 30-32 वर्ष की भरी जवानी में शीलव्रत का सौगन्ध लेकर जिनशासन का गौरव बढ़ाया है। वे अपने कलेजे की कोर को जिनशासन में समर्पित करते हुए भी दु:खी नहीं होते हैं। वे हंसते-हंसते अपने आत्मजों को जिनशासन में समर्पित कर देते हैं। कई श्रावक-श्राविकाएँ महीने में 6 पौषध करते हैं तो कई श्रावक अरबों रुपये की सम्पत्ति होने के बाद भी महीने में 6 दया करते हैं। हर रोज 2000 गाथाओं का स्वाध्याय करते हैं। नियमित 5 सामायिक एवं रात्रि संवर करते हैं। वे भोगों में लिप्त न हों इसीलिए टी.वी. नहीं देखते। दृष्टि विकार न आए, इसलिए अखबार नहीं पढ़ते हैं। एक श्रावक ने 6 महीने एकासन किया और एकासन 5 मि. वाला एकासन और आहार के केवल 8 आइटम। एक श्रावक चार महीने बेला-बेला पारणे करते हैं। पारणे में एकासना। एक श्राविका को 17 आगम कंठस्थ है। एक श्राविका सैकड़ों थोकड़ों की जानकार हैं और बरसों से साधु-साध्वियों को पढ़ाती हैं।

ऐसे न मालूम कितने श्रावक-श्राविका हजारों, लाखों, करोड़ों का दान कर देते हैं। संघ एवं जिनशासन की उन्नति के लिए अपने द्रव्य को समर्पित कर देते हैं। साधु-साध्वियों के पधारने पर कई श्रावक-श्राविका नाचने लग जाते हैं, उत्सव मनाते हैं। सुपात्रदान बहराते हुए न मालूम कितने उत्कृष्ट भावों का वे स्पर्श करते हैं। न मालूम कितने कर्मों का क्षय कर देते हैं। साधु-साध्वी उनकी भक्ति देखकर अचंभित हो जाते हैं। उनकी आँखों में भी अहोभाव आ जाता है। उनकी भावना इतनी ही रहती है कि मेरे साधु-साध्वियों को साता उत्पन्न हो, मेरे साधु को सुख हो, मेरे साधु निरोग हों, मेरे साधु ज्ञानवान बनें, मेरे साधु क्रियावान बनें, मेरे साधु अपने मात-पिता-गुरु

का नाम एवं जिनशासन का नाम चहुंदिश फैलाएं। ऐसे श्रावक-श्राविका रत्नों से जिनशासन भरा है।

कई उच्चकोटि के साहित्यकार हैं तो कई उत्तम श्रेणी के श्रेष्ठी हैं। कई ऊँचे दर्जे के गायक कलाकार हैं, पर वे उत्तम श्रद्धा, भक्ति आदि गुणों से भूषित हैं। कईयों का जीवन ज्ञान रक्षा के लिए समर्पित है। कई जीव रक्षा में अनुरक्त हैं। कई चारित्रात्माओं की भक्ति में संलग्न हैं। ऐसे अनेकानेक गुणों के आकर श्रावक और श्राविकाओं के प्रति अहोभाव, प्रमोद भाव, उनकी प्रशंसा सुनने में, उनकी प्रशंसा करने में, उनका गुणोत्कीर्तन करने में, उनके गुणों का उद्दीपन करने में, उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालने में किसी प्रकार की कोताही न बरतें। उदारता रखें।

तत्वार्थ सूत्रकार कह रहे हैं कि गुणी मुनि और श्रावकों को देखकर इतने भावुक हो जाओ कि आपकी आँखें छलछला जाएं, आपका हाथ आनन्दित हो जाए। आपका मन प्रफुल्लित हो जाए। आपका रोम-रोम नृत्य करने लगे। ऐसे उत्कृष्ट भाव यदि किसी के गुणों को देखने में उत्पन्न होते हैं तभी हम प्रमोद भावना के सही मायने में आराधक होंगे। तभी हमारा हृदय सरल बनेगा। तभी हम मोक्ष के निकट पहुँच पाएंगे।

हे जीव! चिन्तन कर कि तू किसी गुण सम या गुणाधिक पुरुष को देखकर प्रसन्न होता है या ईर्ष्यावृत्ति तेरे भीतर उत्पन्न हो जाती है? ईर्ष्यावृत्ति परम घातक है, गति अवरोधक है, सद्भाव नाशक है। तू अपने भीतर परम प्रमोद भावना का आराधन कर, परम अहोभाव को धारण कर। गुणियों के गुणगान से यदि उत्कृष्ट रसायन उत्पन्न हो तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है। तू अपने हृदय में गुणों का धारक बनता है।

मन-वचन-काया को एकाग्र करके... दोनों नेत्रों को बन्द करके... दोनों-हाथों को जोड़ करके... अपनी कण्ठ की शक्ति का सदुपयोग करते हुए प्रमोद भाव में रम जा। गुणीजनों के प्रति अहोभाव धारण करो, महापुरुषों का वर्णवाद करो। गुणों को देखने का प्रयास करो। गुणों को धारण करने का प्रयास करो। गुणी बनने का प्रयास करो। यदि ऐसा होगा तो हम स्वयं भी

जिनशासन में स्थिर बनेंगे और बाल, शैक्ष, मंद सत्व वाले जीवों को भी उनका गुण कथन करके संयम में स्थिर करेंगे। उनका भी साहस बढ़ेगा। उनका भी मन बढ़ेगा और वे प्राणी भी जिनशासन में अग्रसर होकर मोक्षगामी बनेंगे।

इसलिए प्रमोद भावना का लक्षण कि साधु गुण उत्कीर्तन के समय अपने कानों को खोल लें। नेत्रों को सजल कर लें। रोम कूपों को विकसित कर लें। यह लिंग (पहचान) प्रमोद भावना की है। ऐसा प्रमोद भाव यदि हमारे भीतर प्रकट हो जाए तो बात बन जाए। तो हम भी परम हर्ष का अनुभव करने वाले बन जाएं। वह हर्ष हमारा निजी होगा, हमारा वैयक्तिक होगा। उसे कोई नहीं छीन सकता है। कोई नहीं चुरा सकता, कोई घटा नहीं सकता। ऐसा प्रमोद भाव धारण करो। अपने मन को समाधि भाव में स्थापित करो और...

हृदय को मृदु... वचनों को भक्ति प्रवण व नेत्रों को भीना बनाकर गुणियों का उत्कीर्तन करो।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

कारुण्य भावना

परदु:खप्रतीकारमेवं ध्यायन्ति ये हृदि।
लभन्ते निर्विकारं ते, सुखमायति सुन्दरम्।।

दूसरों के दु:खों का प्रतिकार करने के लिए जो लोग अन्त:करण में इस प्रकार का चिन्तन करते हैं, वे निर्विकार (शाश्वत), भविष्य में कल्याणकारी सुख को प्राप्त करते हैं।

- *शान्तसुधारस*

काश्यप भावना

बादल उमड़-घुमड़ कर छाए हुए हैं। काली घटाएँ फैली हुई हैं। मंद-मंद पुरवाई चल रही है। बिजलियाँ चमक रही हैं। बादल गर्जना कर रहे हैं। धीमी-धीमी फुहारें गिर रही हैं। झिरमिर, मंद-मंद मुस्काती, बलखाती, लहराती, नाचती, झूमती, गाती बरखा रानी बरस कर सबको तृप्त कर रही हैं। सारी सृष्टि प्रफुल्लित है, पुलकित है, जो अब तक भयंकर प्रचंड दिन मणि की मरीचियों से त्रस्त थी, जली हुई थी, सूखी हुयी थी, त्राहि-त्राहि मची हुयी थी। सबकी नजरें आकाश की ओर उठी हुयी थीं।

सूरज सुबह से तप रहा था, सबको जला रहा था। खेत सूख चुके थे। नदियाँ सदा नीरा का विशेषण खो चुकी थीं। तालाब सिकुड़ चुके थे। हिरण, बारहसिंगा, गाय, घोड़ा, बैल सभी पानी के बिना तरस रहे थे। चारे के बिना उनकी हड्डियाँ निकल चुकी थीं। कई तो मर रहे थे। लोगों ने अपने पशुओं को घरों से बाहर निकाल दिया था, क्योंकि लोगों के खुद के खाने को कुछ नहीं था फिर वे पशुओं को क्या खिलाते। ऐसे मौकों पर आवारा घूमते मूक प्राणियों को कसाई गाड़ियों में भर कर ले जाने लगे थे। रोज दर्जनों पशु मौत के घाट उतर रहे थे।

तापमान 50 डिग्री को पार कर चुका था। उस भरी गर्मी में कोई पापड़ सेंक ले ऐसा ताप था। दोपहर को सड़कें सूनी थीं, चौराहे वीरान थे, दुकानें निर्जन थीं, चौपालें शांत थीं। सभी अपने-अपने घरों में दुबके लू से बचने का असफल प्रयास कर रहे थे। सारे प्रयासों के बावजूद लोगों के मरने की खबरों से अखबार भरे थे। त्राहिमाम, त्राहिमाम की कारुणिक अवस्था बनी हुई थी। हर कोई वृष्टि के लिए प्रार्थना कर रहा था।

शहर के पुरोहितों ने इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ शुरू कर दिये थे। हवन में आहुतियाँ दी जा रही थीं। यह सब होते-होते एक दिन आकाश में काली घटाएँ नजर आने लगीं। फिर बारिश होते देर नहीं लगी। बादल उमड़-घुमड़ कर नाच रहे थे, बिजलियाँ चमक रही थी, पुरवाई चलने लगी। मयूर नृत्य करने लगे। झिरमिर, झिरमिर वृष्टि से माटी की सोंधी गंध वातावरण को महका रही थी। कोयल कूकने लगी, हाथी चिंघाड़ने लगे, तोते गाने लगे, मैना कुहकने लगी। माटी पानी से मिलकर अपनी प्यास बुझा रही थी। प्यास ही नहीं बुझा रही थी, तृप्ति का अनुभव कर रही थी। नदियाँ बहने लगीं, पूर आने लगे थे। कहीं तालाबों ने फैलाव लेना शुरू कर दिया तो कहीं झरने फूटने लगे।

सारी वनराशि अपने परिपूर्ण सौंदर्य के साथ निखरने लगी थी। एक-एक पत्ता चमक उठा। एक-एक शाखा धुल चुकी थी। एक-एक फूल निखरने लगा था। सारी जमीन हरी चादर ओढ़कर दुल्हन की भाँति सजी थी। चम्पा के सफेद, गुलाब के लाल, लिली के नीले, गेंदे के पीले रंगों से धरती पटी हुई थी। सारा वातावरण खुशनुमा बन चुका था। पूरा जगत् प्रकृति के प्यार को पाकर नहा चुका था, नया हो चुका था, तरुण हो चुका था।

यही है करुणा, यही है अनुकम्पा, यही है दया, यही है कृपा। प्राणी जगत् अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा था। अनेक गति, योनि, पर्यायों में निरन्तर भटक रहा था, दु:ख पा रहा था, पीड़ित हो रहा था और सत्व को विस्मृत हो रहा था। अनादि के उतार-चढ़ाव में, ऊँच-नीच में, उत्थान-पतन में यह जीव कभी भयानक नरक यात्रा करता है तो कभी तिर्यंच में कोड़े खाता है और कभी निगोद के भयंकर स्थल पर पहुँच जाता है। इन सारी वेदनाओं को प्रभु जानते हैं। इस पीड़ा का अनुमान भगवान को है। इन सारे परिवर्तनों से भगवान वाकिफ हैं। उन्हें भली-भाँति बोध है कि कैसे पामर प्राणी यातना पाते हैं, दु:खी होते हैं, त्राहि-त्राहि करते हैं। निगोद के संकोच की भगवान हस्तामलकवत् जानकारी रखते हैं और जिनेश्वर देव उन जीवों की यातनाओं को देखकर करुणार्द्र हो जाते हैं। प्रभु उन जीवों के

कष्टों को अनुभव करके दयार्द्र हो जाते हैं। वे प्रभु उन जीवों की पीड़ा देखकर भावुक हो जाते हैं।

कहानीकार कहते हैं कि तीर्थंकर भगवान महावीर ने साढ़े बारह साल तक घोरातिघोर कष्टों का अनुभव किया था। एक से एक भयानक परिषह उनके साधना काल में आए थे। यदि हम उन उपसर्गों का ब्यौरेवार ध्यान से पढ़ले तो हमारी रूह कांप जाती है। हम सिहर उठते हैं। हम उतनी कल्पना तक नहीं कर सकते।

क्या आप कान में कीलें ठुकवाने की कल्पना कर सकते हो ?

क्या आप पैरों पर खीर पकवा सकते हो ?

क्या आप चींटियों से अपने शरीर को छलनी होता देख सकते हो?

क्या आप हाथी के पैरों तले कुचले जाने की कल्पना कर सकते हो ?

क्या आप हजारों बिच्छुओं का डंक मारना बर्दाश्त कर सकते हो?

क्या आप छ: महीने तक बिना अन्न-जल रहने की सोच सकते हो ?

क्या आप 3-3 साल लाट देश के भयंकर कष्ट की कल्पना कर सकते हो ?

क्या आप सोच सकते हो कि आपको फांसी लगा दी जायेगी?

क्या आप सोच सकते हो कि आपको भट्टी में डाल दिया जायेगा?

क्या आप सोच सकते हो कि आपके पीछे छू-छू करके कुत्ते छोड़ दिये जायेंगे ?

क्या आप इन सारे में से एक की भी कल्पना कर सकते हो ?

क्या आप इन सब में से एक को भी सहन कर सकते हो ?

बोलो... सोचो... एकाकार होकर चिन्तन करो...

उन परम प्यारे परमात्मा ने इन सारे कष्टों को समभाव से सहन किया। इन सारे उपसर्गों में भी उनके मुँह से उफ तक नहीं निकला। वह महामानव इन सबको सहन करता हुआ भी मुस्कुराता रहा और अपने में निश्चल रहा, लेकिन सातवीं नारकी के कष्टों को देखकर प्रभु की आँखें दयार्द्र हो गईं। निगोद के कष्ट देखकर प्रभु करुणार्द्र हो गये। जन्म-मरण के

दु:खों को जानकर प्रभु का हृदय...!!!

और फिर प्रभु की पतित पावनी देशना प्रवाहित हुई। करुणा का दरिया बहने लगा, जिसमें दया की कल-कल, छल-छल करती सरिता आगे बढ़ने लगी। प्रभु ने एक मात्र जीवों की दया रक्षा के लिए ही उपदेश दिया था।

सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए
भगवया पावयणं सुकहियं

उनका एक मात्र उद्देश्य जीवों की रक्षा कर उनको दु:खों से छुड़ाकर सुखी बनाने का था। इस एक मात्र उद्देश्य से प्रभु ने दु:खमुक्त होने हेतु वाणी फरमाई। ये प्रभु की करुणा का ही प्रभाव है।

इन्द्र सभा में एक देव ने प्रभु के धैर्य के बारे में सुना। उसका नाम संगम था। उसे प्रभु के सत्व का बोध नहीं था। उसने सोचा वह सात हाथ का हाड़-मांस का पुतला क्या इतना धैर्य रखेगा? मैं अभी जाता हूँ और उसे उपसर्ग देकर डिगा कर आता हूँ। वह देव सभा से निकल कर वहाँ पहुँचा जहाँ भगवान विराजित थे। उस समय प्रभु निर्जन स्थल पर ध्यानस्थ थे। भयानक काली और डरावनी रात में वे धर्मध्यान में, आत्मध्यान में स्थिरता बनाए हुए आत्मस्थ थे कि संगम ने आकर कोहराम मचा दिया।

संगम ने तप्त, लाल सुर्ख, तीक्ष्ण, तीखी, उबली हुई, अंगारों सी रेत की बारिश भगवान की कोमल काया पर कर दी। सोचो... सोचो... और सोचो ! कितनी वेदना! कितनी पीड़ा! कितना दु:ख हुआ होगा भगवान को! कितना हृदय विदारक दृश्य रहा होगा, परन्तु प्रभु समत्व की पराकाष्ठा में स्थित अडिग, अचल, निष्कंप, अकंप, आत्मलीन खड़े थे।

संगम हार गया, प्रभु जीत गये। जैसे हारा हुआ जुआरी दुगुना दांव खेलता है वैसे ही संगम द्वारा दिये गये एक उपसर्ग से दूसरा उपसर्ग भयानक व बढ़ा-चढ़ा था। परन्तु प्रभु की समता भी एक से बढ़कर एक पायदान चढ़ती जा रही थी। कहते हुए जुबान कांप जाती है, आँखें भर रही हैं, दिल भीग रहा है कि एक रात में प्रभु को 20 भयानक उपसर्ग दिये गये, परन्तु प्रभु

शान्त-दान्त, मूक-मौन, आत्मस्थ बने रहे। यह सिलसिला यहीं खत्म नहीं हुआ। चलता रहा, अनवरत बढ़ता रहा।

स्थिति यह हो गयी कि भगवान जहाँ विराजते संगम वहीं पहुँच जाता। आहार का अंतराय, पानी की अंतराय, अनर्गल प्रलाप, अश्लील संवाद, राजकीय आरोप, मुखबिरी का इल्जाम, फांसी के तख्त से लेकर डंडे पड़ने तक सारे कार्य वह प्रभु के साथ करता गया। यह क्रम छह माह तक जारी रहा। छह माह बाद संगम थक-हार गया, पराजित हो गया। उसने घुटने टेक दिये। उसने जाने से पहले प्रभु के समीप आकर उनसे क्षमायाचना करते हुए कहा कि मैंने आपके बारे में जैसा सुना था उससे भी कई गुना आपकी समाधि और समता है। धन्य हैं आप, धन्य है आपकी समता, धन्य है आपका धैर्य।

प्रभु ने नेत्र खोलकर जैसे ही उस पामर प्राणी पर करुणाकर दृष्टि डाली तो कहानी कहती है कि वे आँखें सजल, दयार्द्र हो जाती हैं। उनकी इस अवस्था को देखकर संगम अचंभित हो गया। उसने कहा- प्रभु यह क्या हो रहा है ? छः माह के उपसर्ग में आप विचलित नहीं हुए उल्टे अब जब मैं जा रहा हूँ और आपके लिए खुशी का समय है तो आप...

प्रभु की गंभीर गिरा गिरती है- हे संगम ! तुम मेरे उपकारी हो क्योंकि तुमने मेरे अनंतानंत कर्मों की निर्जरा करवाई, परन्तु मैं सोचता हूँ कि तुमने मेरे निमित्त जिन भयंकर कर्मों का उपार्जन किया है जब उनका उदय होगा तब तुम्हारा क्या हाल होगा? तब तुम कैसे रहोगे, यह सोचकर मैं चिन्तित हूँ।

यह है करुणा। यह है दया, यह है अनुकंपा। प्रभु की करुणा अनवरत प्रवाहित है। भाँति-भाँति से प्रवाहित है। धर्मरुचि अनगार कीड़ियों पर दया करते हैं। मेघकुमार पिछले भव में हाथी की पर्याय में खरगोश की रक्षा करते हैं। मेतार्य मुनि मुर्गे की दया के लिए सिर पर गीला चमड़ा बंधा लेते हैं। हाथी ढाई दिन तक एक पैर उठाकर रखता है। धर्मरुचि कड़वा तुम्बा अपने हलक में उतार लेते हैं। इसका एक मात्र कारण करुणा भावना ही थी। जीव

प्राणभूत जीव सत्व पर अनुकंपा करता हुआ कर्मों की निर्जरा करता है और शुभ कर्मों का बंध करता है।

हे जीव ! तू सम्यक् रीति से जगत् का निरीक्षण कर कि किस तरह से जीव संसार में दु:खी हो रहे हैं। उन्हें सर्वप्रथम आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। वे अभावग्रस्त जीवन जी रहे हैं। उनके पास खाने के लिए भोजन का अभाव है। पहनने के लिए वस्त्रों का कमी है। स्वास्थ्य के लिए औषधि मिल नहीं रही। रहने के लिए मकान का निर्माण कर नहीं पा रहा। अभाव ग्रस्त जीवन का असर अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में पड़ रहा है। दीन-दु:खी लोग जगत् में यत्र-तत्र फैले हुए अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का फल भोग रहे हैं। चूंकि सभी का अपना-अपना कर्मबंध है इसलिए हम उसमें कुछ नहीं कर सकते हैं। परन्तु उन दीन-दु:खी जीवों को देखकर कहा कि **"दीन-दु:खी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे"** ताकि मैं अपने समक्ष दिखने वाले जीवों के दु:खों को देखकर उनके दु:ख को दूर करने का प्रयास करूं एवं उन जीवों के कष्टों को समझूं कि **"सव्वे जीवा वि इच्छंति जिविउं न मरिजिउं"** सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

इसलिए सव्वे पाणा न हंतव्वा न घातव्वा न परियावेतव्वा यानी किसी भी प्राणी का हनन मत करो, घात मत करो, परितापना उत्पन्न मत करो। जैसे तुम्हें सुख प्रिय है और दु:ख अप्रिय, वैसे ही सभी प्राणियों को भी सुख प्रिय है और दु:ख अप्रिय। सव्वे पाणा पियाउया, दुक्खपडिकूला अप्पियवहा सभी प्राणी वध को अप्रिय मानते हैं और उन्हें कष्ट न पहुँचाना ही करुणा है। उन्हें सुख पहुँचाना ही करुणा है। उन्हें सांत्वना देना करुणा है। उन्हें साता पहुँचाना करुणा है। हम शुभ पुण्य के उदय के कारण वर्तमान भव पर्याय में सुखी-समृद्ध हैं, परन्तु दूसरा अपने अशुभ उदय के कारण दु:खी और दरिद्र। तब तुम उन प्राणियों को देखकर उनका मजाक न उड़ाओ, उनका मखौल न बनाओ। प्रत्युत उन्हें दु:ख मुक्त करने का प्रयास करो।

शौर्यपुर नगर, समुद्रविजय राजा, शिवा रानी, अरिष्टनेमी कुमार, 1008 लक्षणों से युक्त श्याम वर्ण समचतुरस्र संस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन।

अवगाहना, सुन्दर, सुकुमाल, सलोनी देहयष्टि, मनोज्ञ आकृति जिसे देखकर सभी उनके विवाह की चर्चा करने लगे। कुमार की इच्छा नहीं थी, परन्तु उन्होंने सबके अत्याग्रह को देखकर मौन धारण कर लिया और मौन को स्वीकृति का लक्षण मान लिया गया। संबंध तय हुआ। उग्रसेन राजा, रानी, राजीमति कुमारी सर्वगुण सम्पन्न, रूप-लावण्य सम्पन्न, विदुषी ऐसी कुमारी के साथ विवाह तिथि निश्चित की गई। ठीक समय बारात सजी।

भगवान, गंधहस्ती पर वर के वेश में विराजमान हुए। पीछे कृष्ण का रथ और पूरी चतुरंगिणी सेना दस यशार्द आदि बड़े-बड़े महाराजा, महाराज कुमार। शहनाइयाँ बज रही थीं, बांसुरी गा रही थी, तबलों पर थाप दी जा रही थी और घुंघरुओं की सौ ताल मिलाई जा रही थी। पूरा यादव और वृष्णि कुल खुशी में आकंठ डूबा था। बारात शौर्यपुर से निकली और नगर के बाहर बारात के निकलते समय भगवान की दृष्टि पिंजरों में कैद हजारों मूक प्राणियों पर पड़ी। उनकी नजरों से वह कारुणिक दृश्य छुप नहीं पाया। उन्हें हिरण के आंसू दिखाई दिये, गाय का रुदन सुनाई पड़ा, तोते की आरजू जान पड़ी। बन्दर की धड़कन आदि से भगवान उन सहमे हुए त्रस्त जीवों को देखकर दयार्द्र हो गये। अपने महावत से पूछा- कहो देवानुप्रिय, इन प्राणियों को क्यों बन्द कर रखा है ? महावत ने प्रभु के पूछने पर तथ्य प्रकट करते हुए कहा कि आपके विवाह में समागत क्षत्रिय राजाओं के भोज के लिए इन प्राणियों का संरक्षण किया गया है। इनका भक्षण किया जाएगा।

ऐसा सुनकर भगवान विचारमग्न हो गये कि इतने प्राणियों की हिंसा मेरे निमित्त! यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है। यह मेरे परलोक में हितकर नहीं है। यह तो मेरे भावी जीवन को बिगाड़ने वाला है। चरम शरीर, तीर्थंकर, मोक्षगामी, तीन ज्ञान के धारी, यादव कुल शिरोमणि, सबके ललाम, सबके चहेते प्रभु सोच रहे हैं कि मेरे भावी के लिए हितकर नहीं होगा मेरा भविष्य, जबकि मोक्ष निश्चित है। ऐसा विचार कर भगवान ने आदेश दिया कि प्राणियों को पिंजरों से मुक्त किया जाए और हाथी को मोड़ा जाये।

मुक्त होने पर उन प्राणियों के हर्ष को देखकर प्रभु नाच उठे,

उल्लसित हो गये, आल्हादित हो गये, आनंदमग्न हो गये। प्रभु ने कहा कि मुझे शादी नहीं, जीव रक्षण करना है। मुझे दया पालनी है। प्रभु ने फरमाया कि मुझे यतना करनी है और इस करुणा भाव से प्रेरित होकर प्रभु संयम पथिक बनते हैं।

ये करुणा का उत्कृष्ट उदाहरण है। हम सभी अपने भीतर करुणा भाव को धारण करें। जयं चरे का उपदेश स्वीकार करें, जये मासे के अनुसार वर्तन करें, जयं चिट्ठे के अनुसार व्यवहार बनाएं। हमारा कोई भी कार्य अयतना, असावधानी पूर्वक न हो। सभी कार्य हम परिपूर्ण यतना पूर्वक करें। वह छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा क्यों न हो। यह दृष्टि करुणा भावना से उत्पन्न होगी। यह जीवन करुणा भावना का परिणाम होगा। प्रत्येक कार्य को करते हुए परिपूर्ण यतना, दया हमें अपने जीवन में साता वेदनीय का बंध करवाएगी, जिसके कारण हमें दु:ख और रोग स्पर्श भी नहीं कर पाएगा। हम दूसरों के लिए साताकारी बनें। उन्हें साता पहुँचाए। सूक्ष्म निगोद से लेकर महाऋद्धिशाली देव तक सभी जीवों के प्रति करुणा भावना, यतना का भाव, दया का भाव हमारे भीतर बढ़े और निरन्तर बढ़ता ही रहे।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

माध्यस्थ भावना

योऽपि न सहते हितमुपदेशं, तदुपरि मा कुरु कोपं रे!
निष्फलया कि परजनतप्त्या, कुरुषे निजसुखलोपं रे!।।

जो व्यक्ति हितकर उपदेश को भी सहन नहीं करता, उस पर तू क्रोध मत कर। तू बिना मतलब दूसरे के विषय में चिन्ता कर अपने सुख का लोप क्यों कर रहा है?

- *शान्तसुधारस*

माध्यस्थ भावना

माध्यस्थ शब्द मध्य+स्थ अर्थात् मध्य में स्थित होना, मध्य में आ जाना या बीच में आ जाना है। भगवान ने आचारांग में फरमाया है कि मज्झत्थो निज्जरा पेहिं यानी माध्यस्थ भाव में आने वाले को निर्जरा होती है अथवा निर्जरा प्रेक्षी को मध्य में आना चाहिए। व्यक्ति दो तटों के बीच में नहीं रह पाता। वह या तो इस किनारे चलता है या उस किनारे। वह दो छोरों पर चलता है, मध्य में नहीं चलता। मध्य में चलने वाला ही बच सकता है।

घट्टी चलती है और दोनों पाटों के बीच में जो भी दाने आते हैं वह पिसकर चूर्ण हो जाते हैं। परन्तु जो दाना कील से लगा रहता है वह साबुत रह जाता है। वैसे ही मनुष्य मन से दो पाटों के बीच में पिसता रहता है। या तो वह राग के पाट पर पिसता है या द्वेष के पाट पर। एक और मजे की बात कि जहाँ राग का पाट होता है वहाँ द्वेष का पाट होगा ही और जहाँ द्वेष का होता है वहाँ राग का होगा ही। दोनों प्राय: साथ-साथ रहते हैं। दोनों साथ-साथ चलते हैं। जो मध्य में आ जाता है अर्थात् जो न राग में जाता है, न द्वेष में वह विजेता कहलाता है। राग भी घातक है और द्वेष भी। राग भी कर्मबन्धक है तो द्वेष भी। राग व द्वेष दोनों ही संसारवर्धक भी हैं।

दोनों घातक हैं और जो इन दोनों से उपरत है, जो इन दोनों से विरत है वह उत्तीर्ण है, पारगामी है, अबंधक है। उसके लिए मोक्ष दूर नहीं है। उसके लिए सुख, आनंद, उत्सव कोई बड़ी बात नहीं है। मध्य में आ जाना माध्यस्थ भावना है और यह जगत् के सर्वाधिक कठिन कार्यों में से एक है। शास्त्रों में कहा गया है कि "समलेट्ठु कंचणे भिक्खू" अर्थात् भिक्षु कंचन और लोहे को समान नजर से देखे। कंचन और मिट्टी के ढेले में कोई भेद नहीं रखे।

''इत्यंपि अगहे चरे मध्य'' अर्थात् अग्रहण करते हुए चलना। मध्य अर्थात् किसी को भी बिना पकड़े चलना है। मध्य अर्थात् किसी से भी नहीं बंधना है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है, वह किसी से भी बंधा हुआ नहीं है। वह अनियत चारी है। यह अग्रहण भाव है। वैसे ही साधक किसी से भी आसक्ति भाव नहीं जोड़ता है। किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में वह बंधता नहीं है। वह अप्रतिबद्ध विहारी होता है। वह किसी भी प्रकार की निश्चयकारी भाषा नहीं बोलता है। वह संबंध निर्याणक शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। वह मोहवर्धक भाषा का उपयोग नहीं करता है। वह जगत् को मध्य में स्थित होकर देखता है। वह जगत् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता होता है और उसे सम्यक् प्रकार से अनुभव करता है।

जो ऐसा करता है, भगवान फरमाते हैं कि ''कुसले पुण नो बंधे नो मुक्के कुशल पुरुष'' न बंधता है न मुक्त है, वह सिर्फ मध्य में है। वह न राग में है न द्वेष में। वह न प्रेम में है न घृणा में। वह वस्तुओं को देखता है तो उनके शुद्ध पर्याय के रूप में देखता है। उसके मूल स्वरूप में बिना राग-द्वेष के देखता है और कर्मों से भी नहीं बंधता है। भगवान के पास भगवान की माता देवानंदा आती हैं। भगवान उन्हें आते हुए देख रहे हैं, पर कोई मोह भाव जागृत नहीं होता है। वे मध्य में रहते हैं। जैसे जयंति को देखा वैसे ही देवानंदा को देखा। जैसे आनंद श्रावक को देखा वैसे ही ऋषभदत्त (पिता) को देखा। वे न मोह में गये न घृणा में गये।

वे **'पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई'** यानी जैसा कथन पुण्यवान के लिए, धनाढ्य के लिए करते थे वैसा ही कथन गरीब-दरिद्र के लिए भी करते थे। उनके समक्ष श्रेणिक राजा आ जाए तो भी वही दृष्टि है और पूणिया श्रावक आ जाए तो भी वही दृष्टि है। वे समान दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि में न तो धार्मिक व्यक्ति पर राग और न ही अधार्मिक पर द्वेष। वे कामदेव श्रावक पर राग भाव नहीं रखते थे और कालसौकरिक कसाई पर घृणा भाव नहीं रखते थे। वे दोनों के मध्य में थे।

कमठाखुर भयंकर जलवृष्टि कर रहा है। नासिका तक जल स्तर हो चुका है। भगवान डूबने के कगार पर हैं। इतने में ही धरणेन्द्र नीचे कमल और

ऊपर फणी की रचना कर देते हैं। तब भी प्रभु न कमठ पर जुगुप्सा करते हैं, न धरणेन्द्र पर प्रेम दर्शाते हैं। वे वितृष्णा से मुक्त थे। वे मध्य में थे और मध्य में थे इसीलिए वितृष्णा से दूर थे। प्रभु के जीवन का आकलन करने पर हमें माध्यस्थ अवस्था के अनगिनत दृष्टांत अनुभव में आएंगे। भगवान की साधना का सार एक शब्द 'निष्यंद' में समाहित है। जो भी हो रहा है, जैसा भी हो रहा है उससे भगवान को कोई फर्क नहीं पड़ता है। उनकी दृष्टि में कोई भेद उत्पन्न नहीं होता है। वे निश्छल एवं निश्चित अपनी दृष्टि में स्थित रहते हैं। न राग न द्वेष। इसीलिए उन्हें वीतराग कहा है।

साधक जब तक राग-द्वेष आदि परिणतियों में भ्रमण करता है तब तक उसका भ्रमण सुख से दु:ख में और दु:ख से सुख में होता ही रहता है। परन्तु जैसे ही वह मध्य में आ जाता है आनन्द को उपलब्ध हो जाता है। सुख और दु:ख से ऊपर भी एक शब्द है- आनन्द सुख। सुख और दु:ख से भी हटकर आनंद है। आनन्द आत्म सापेक्ष है, आनन्द अन्तर सापेक्ष है, आनन्द वह आन्तरिक उपलब्धि है, जो वस्तु पर आधृत नहीं है, वह आत्मा पर आधृत है अर्थात् कुछ भी न होने पर भी आत्मलीन है, आत्ममग्न है।

ज्ञानी जन प्रभु के माध्यस्थ वृत्ति को दर्शाते हुए कहते हैं कि एक तरफ निर्वस्त्रता और दूसरी तरफ स्वर्ण का सिंहासन माध्यस्थ ही कर सकता है। इधर नग्न चरण और उधर स्वर्ण कमल की वृत्ति माध्यस्थ की ही हो सकती है। इधर निष्परिग्रही और उधर समवसरण का निर्माण अद्भुत द्वैत माध्यस्थ में ही हो सकता है। यह तीर्थंकरों के ही सामर्थ्य की बात है।

कहाँ अनंत इन्द्र का बल और कहाँ कुत्ते काट रहे हैं। कहाँ अनंत इन्द्र की सामर्थ्य और कहाँ एक तुच्छ आदमी तेजोलेश्या फेंक रहा है। यह दोहरा जीवन प्रभु के जीवन में ही दिख सकता है। अनन्तज्ञान होने पर भी निराभिमानता प्रभु का गुण है। अनन्त ऐश्वर्य होने पर भी अकिञ्चनता प्रभु की ही छवि है। अनंत सुख होने पर भी निर्लोभता प्रभु में ही पाई जा सकती है। ऐसा माध्यस्थ भाव प्रभु में ही पाया जा सकता है।

प्रभु दोनों चरम पर हैं। इधर नग्नता से दरिद्रता चरम पर है और उधर

निगड़े से ऐश्वर्य चरम पर है, पर प्रभु मध्य में हैं। इधर अपरिग्रहत्व से अकिञ्चनता चरम पर है और उधर स्वर्ण सिंहासन से वैभव चरम पर है। वे दोनों चरमों के बीच में हैं। वे मध्य में हैं और जो मध्य में रह जाते हैं वे पार हो जाते हैं। कहा है- **''विमत्ता हु जे जणा जे जणा पार गामिणो''** अर्थात् जो मुक्त होते हैं वे पारगामी हो जाते हैं। यदि आप सुख और दु:ख के पार आनन्द में पहुँचना चाहते हैं तो आपको मुक्त होना पड़ेगा।

उन्हें गौतम से बंधन नहीं था। वे गौतम के मोह से बंधे नहीं थे और न ही गौशालक के द्वेष से पलायन कर रहे थे। वे स्थिर थे, अविचल थे, अकंप थे, निष्प्रकंप थे। कोई कुछ भी करे उन में कोई बदलाव नहीं आता था। इस तरह माध्यस्थ वृत्ति का उत्कृष्ट रूप तीर्थंकर भगवान में उपलब्ध होता है।

अब हम दूसरे तरीके से माध्यस्थ भाव की चर्चा करेंगे। अभी जो चर्चा मैंने की है वह अप्रचलित सी है। अब मैं प्रचलित धारणा प्रस्तुत करता हूँ।

माध्यस्थ = उदासीनता, औदासीन्यवृत्ति। कहा है- सर्वभाव थी औदासीन्य वृत्तिकरी। सारे भावों से हटकर निज को उदासीन भाव में लाना, उपेक्षा भाव में लाना माध्यस्थ भावना है। इस जगत् में नानाविध लोग हैं। उनके स्वभाव, उनकी वृत्ति, उनका वर्तन, उनका व्यवहार भाँति-भाँति का है। वे अनेक प्रकार के कार्यों में लिप्त हैं, कुकृत्यों में आसक्त हैं। उनका जीवन कदाचरण में आकंठ डूबा हुआ है। वे मनचाही प्ररूपणा करते हैं। मन चाही तत्व की प्ररूपणा करते हैं। सिद्धान्त का मनमाना स्थापन करते हैं। उन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है। उनका अहिंसा से कोई ताल्लुक नहीं है। वे अस्तेय पर विश्वास नहीं करते हैं। वे शील, सदाचार का मखौल उड़ाते हैं। उन्हें अपरिग्रहत्व एवं अपरिग्रही नहीं रुचते हैं। वे क्रोध से तमतमाए रहते हैं। वे मान के ठूंठ बने खड़े हैं। वे माया में उलझे रहते हैं। वे लोभ से संसक्त हैं। उनके जीवन का कोई उसूल नहीं रहता है। उनके जीवन में कोई सिद्धान्त नहीं रहता है। उनके जीवन में कोई सदाचार और सद्व्यवहार नहीं रहता है। वे अपने को ही प्रतिष्ठित किये रहते हैं। अपने ही अनुसार मनमाना स्थापन करते हैं। और तो और उन्हें यदि उनके कृत्यों के बारे में बताया जाय, उन्हें उनके दोषों के प्रति आगाह किया जाए तो वे तमतमा जाते हैं, क्रुद्ध हो जाते

हैं। इतना ही नहीं वे उस शिक्षा दाता पर रुष्ट हो जाते हैं और उन्हें ही गलत प्रचारित करने लग जाते हैं। उनके बारे में अनर्गल प्रलाप करने लगते हैं। ऐसे लोगों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना ही उदासीनता है, औदासीन्य वृत्ति है। ज्ञानी पुरुष ऐसे लोगों के प्रति उदासीन रहते हैं। उनके प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं।

कहा है- उपदेशों हि मूर्खाणां प्रकोपाय विवर्धये अर्थात् मूर्खों को दिया जाने वाला उपदेश कोप की ही वृद्धि करने वाला होता है। वह उलटे उस हित शिक्षा प्रदाता पर ही आरोप-प्रत्यारोप करने को उद्यत हो जाता है। ऐसे समय में माध्यस्थ भावना ही उचित है। ऐसे समय में उदासीनता ही उचित है। ऐसे समय में उपेक्षा ही आसेव्य है।

स्वयं परमात्मा ऋषभ मरीची के उन्मार्ग प्रवर्तन के प्रति उदासीन थे क्योंकि वे भवितव्यता जानते थे। कच्छ-महाकच्छ आदि ने तापस मार्ग का प्रवर्तन किया तब भी भगवान निर्लिप्त थे क्योंकि वे माध्यस्थ थे। मध्य में स्थित थे। भरत बाहुबली के युद्ध का ज्ञान भगवान को था ही परन्तु वे उदासीन थे। अरिष्टनेमि महाभारत का भयंकर नरसंहार देख रहे थे, पर उनकी चित्तवृत्ति तटस्थ थी। उनके मन में किसी प्रकार का ऊहापोह नहीं था। स्वयं भगवान महावीर और उनका ही जंवाई जमाली जो कि उत्सूत्र सिद्धान्तों का प्ररूपण कर रहा है फिर भी भगवान उससे अप्रभावित थे।

भगवान जानते थे कि होनहार क्या है। फिर भी उन्होंने उसे दीक्षा दी, उन्होंने अध्ययन कराया। उन्होंने उसे दीक्षित कर मुण्डित किया, शिक्षित किया और भविष्य में जो भी घटने वाला है भगवान उसे मध्य में स्थित होकर ज्ञाता द्रष्टा भाव से देख रहे थे। वे अपने समता रस को खण्डित नहीं होने देते हैं। वे अपने आनन्द में अनवरत अवगाहन करते हैं। वह अक्षुण्ण रहता है। वह अखण्डित रहता है। उदासीनता परम सुखदायक परम तृप्ति दायक है। इसके अभाव में जीव निरंतर चकडोलर की भाँति गतिशील रहता है। स्थिरतादात्री यदि कोई है तो वह एक मात्र माध्यस्थ भावना है।

हम जहाँ निवास करते हैं वह मध्यलोक कहलाता है। हम से ऊपर

ज्योतिष चक्र, उससे असंख्यात योजन ऊपर सौधर्म और ईशान, उससे ऊपर सनत्कुमार, माहेन्द्र, उससे ऊपर ब्रह्म और लांतक, उससे असंख्यात योजन ऊपर महाशुक्र सहस्रार, उससे असंख्यात योजन ऊपर आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, फिर नव ग्रैवेयक, उससे असंख्यात योजन ऊपर 5 अनुत्तर विमान और उससे 12 योजन ऊपर सिद्धशिला स्थित है। सिद्धशिला 45 लाख योजन लम्बी-चौड़ी है। जिसकी परिधि एक करोड़ बयालिस लाख दो सौ सोलह योजन झाझेरी है। वह अर्जुन स्वर्ण मयी है। अन्त में मक्खी के पंख की भाँति पतली हो जाती है। उससे 1 योजन के छठे भाग जितने क्षेत्र में मध्य आकाश में अलोक से पूर्व लोक के अग्र भाग पर पंचास्तिकाय के साथ अनंतानंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जो अनंत आनन्द में लीन होकर अनन्त सुखों में अवगाहन करते हुए अष्ट कर्मों से रहित हैं।

उनकी वर्णातीत, गंधातीत, रसातीत, स्पर्शातीत अवस्था है। वे सादि अनन्त काल तक उसी अवस्था में विराजेंगे। उन्हें केवलज्ञान एवं केवलदर्शन है। सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जानकार हैं। वे सारे पर्यायों को जानते हैं। वे अनन्त भूत काल और अनन्त भविष्य को जानते हैं। वे वर्तमान की सर्व पर्यायों के ज्ञाता हैं। वे सभी परिवर्तनों के जानकार हैं। वे नैरयिकों का भयंकर क्रन्दन भी सुन रहे हैं। वे देवों का हास-परिहास भी सर्वज्ञता से जानते हैं। वे देवियों के परम सौन्दर्य को देखते हैं। नारक के भयंकर विद्रूप को देखते हैं। वे अद्‌भुत गंधों का अनुभव कर रहे हैं। वे भयंकर दुर्गंधों को भी जानते हैं। वे लजीज व्यंजनों के स्वाद को समझ रहे हैं। घृणिततम व्यंजनों को भी जान रहे हैं। वे मनोज्ञतम स्पर्शों का भी परिज्ञान रखते हैं और अमनोज्ञतम भी उनसे प्रछन्न नहीं है।

संक्षेप में वे पूरे लोक को उसकी सभी प्रप्य एवं पर्यायों के साथ युगपत् जानते हैं, देखते हैं। सदा-सदा जानते और देखते रहेंगे, परन्तु वे इन सारी ध्वनियों से, सारे रूपों से, गंध से, स्वाद से, स्पर्श से और सारे परिवर्तनों में उदासीन हैं। सब में माध्यस्थ वृत्ति धरे हुए हैं। वे अनंतानंदालीन हैं क्योंकि माध्यस्थ हैं और माध्यस्थ हैं इसीलिए आनंदालीन हैं।

हम भी अपने भीतर के उस स्वरूप को जागृत करें। उस स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें और उस स्वरूप में लीन होने के लिए पुरुषार्थ करें, जिससे कि हमें भी किसी परिस्थिति में घटना या परिवर्तन में कोई दु:ख अनुभव न हो। कोई भी विषय हमें अपने में अवगाहन करते हुए भटका न सके। अपने में रमण करने में बाधा उपस्थित न कर सके। ऐसी अपने उलस्या ही प्राप्त है। नहीं तो वर्तमान में हम जिस तरह से राग-द्वेष के परिणामों में रमण करते हैं।

व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम के द्वारा फैलने वाली खबरें और अफवाहें। डीपी देख-देखकर कमेंट्स करने की आदतें और उनमें फैलने वाली चर्चाओं से स्वयं को जोड़ लेता है। उन्हें फॉरवर्ड करता रहता है। वह ये भी नहीं सोचता कि ये बातें कितनी सच हैं। कितनी उचित हैं। किनके लिए हैं। यहां तक कि ये बातें गुरु-भगवंतों के लिए भी हो जाया करती हैं। इनकी चपेट मे साधु-साध्वी आ जाते हैं और कर्मों के बंध करते जाते हैं। आक्षेप-प्रत्याक्षेप, आरोप-लांछन के क्या परिणाम होते हैं, ये कोई नहीं सोचता। इनका परिणाम देखना हो तो सीता से पूछ लेना, अंजना से पूछ लेना कि एक मिथ्या आरोप की उन्हें क्या कीमत चुकानी पड़ी थी। वह कर्मबंधन कराने वाला है, हमें दु:खी करने वाला है। हमारी समाधि का हरण करने वाला है। हमारे सुख का भंजक है, हमारे परिणामों का परिवर्तक है। इन सारे उपायों से बचने का एक मात्र उपाय है कि तुम माध्यस्थ भावना में रमण करो। उपेक्षावृत्ति में स्थित बनो। उदासीनता को सहचरी बनाओ। जैसे पर्वत, गुफा, कंदरा, वन, अटवी में सारे संसार से विरक्त, उदासीन मुनि भगवंत आत्मरमण में लीन रहते हैं। आत्मरमण के सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं चाहिए। वे जगत् प्रपंचों से उपरत हैं, विरत हैं। उनके मन, वचन, काया, सारी सृष्टि के परिवर्तनों से अप्रभावित आत्मस्थ हैं। कुछ भी हो जाए उनमें कोई भेद नहीं पड़ता है। बाहुबली एक वर्ष तक ध्यान में खड़े हैं, अनाथीमुनि वृक्ष के नीचे स्थित हैं, अरिष्टनेमि कुटुम्ब से अलिप्त हैं। न हरिसे न कुप्पे। न वे हर्षित होते हैं न कुपित होते हैं। न अनुग्गहे न शांत। वे न श्राप देते हैं न अनुग्रह करते हैं। क्रुद्ध भी नहीं होते। कुछ भी नहीं।

जैसे विश्व प्रसिद्ध नियाग्रा फॉल पर रस्सी बांधकर चलने वाले

व्यक्ति को अपना शारीरिक, मानसिक सन्तुलन उत्कृष्टतम बनाए रखना होता है, वैसे ही वे साधक अपना संतुलन कभी नहीं खोते हैं।

हे प्रभु! मैं भी अपने आपको मध्य में लाऊं।
हे प्रभु! मैं भी जगत् प्रपंचों से उदासीन बनूं।
हे प्रभु! मैं भी सारे अलीते-पलीते से अपने को उपरत बनाए रखूं।

न राग, न द्वेष, न मोह, न घृणा। एक मात्र माध्यस्थता और उदासीनता ही मेरे भीतर प्रकट हो। मैं भी आपके सदृश मध्य में रमण करूं। मैं भी एकान्त सेवन करूं। मैं भी राग और द्वेष के कोलाहल से रहित चित्तवृत्ति को उपलब्ध हो जाऊं। उपलब्ध ही नहीं होऊं, अपितु सादि अपयवसित काल तक निरन्तर बना रमण करता रहूँ। मेरे भीतर भी आप सदृश संसार के प्रति उदासीनता बढ़े। मेरे भीतर भी आपके समान शरीर के प्रति उदासीनता बढ़े। मैं भी आपके जैसा विषयों से उदासीन बनूं। मैं भी आपके समान शत्रु-मित्र पर मध्यस्थ रहूँ। मैं निंदक-प्रशंसक पर समभाव रखूं। मैं स्तोता और आलोचक के प्रति भेदभाव न रखूं। मेरा मन भी सारे प्रपंचों को त्याग करके एक मात्र आत्मा में रमण करे। अन्तर में अवगाहन करे।

कहा है कि-

"कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे"

कोई बुरा कहो कोई अच्छा कहो, लक्ष्मी वृद्धि को प्राप्त हो रही हो या मैं रातोंरात कंगाल बन जाऊं, मैं हजारों वर्षों तक जीऊं या आज इसी क्षण मृत्यु मेरा वरण कर ले, मैं प्रसिद्धि के शिखर पर काबिज हो जाऊं या फिर गर्दिश के रसातल में गिर पड़ूं। मेरी जय-जयकार हो या मुझे काले झंडे दिखाए जाएं। कुछ भी हो। अच्छे से अच्छा हो या बुरे से बुरा। कुछ भी घट रहा हो, मैं अपने में ही रहूँ, अन्तर में ही रहूँ, मध्य में ही रहूँ, तट पर ही रहूँ। सदा सर्वदा अपर्यवसित काल तक मैं उस अवस्था में बना रहूँ।

■■■

रुकिये! आगे बढ़ने से पहले इस भावना से क्या पाया, लिखिये।

भावय रे!

महासागर... बेअन्त... अथाह... अनन्त... असीम... विशाल... गहरा... गहन... रत्नाकर... नीला... नीलाभ... सदा... सर्वदा... चञ्चल... उसमें पानी ही पानी है। वह पानी भी निर्मल, स्वच्छ, प्रकृति का अनुपम तोहफा है। सागर अपने आप में अद्‌भुत है। रहस्यों को समेटे है। उसमें विविधता फैली हुई है। विचित्रता रही हुई है। इस सागर में रत्न हैं तो नमक और माटी भी है। इस सागर में मगरमच्छ हैं तो व्हेल जैसी शान्त मछली भी है। इस सागर में लहरों की चञ्चलता है तो अपने में सब कुछ समा लेने की सामर्थ्य भी है। इस सागर के पानी में खारापन है तो मीठे व निर्मल, स्वच्छ पानी के ग्लेशियर भी हैं। सागर उथला भी है तो अत्यंत गहराई लिए हुए भी है। लहरों के ज्वार वाले समुद्र हैं तो शांत-प्रशांत महासागरों की भी कमी नहीं है। इसमें अक्षय शीतल जल भंडार भी है तो वडवानल के सदृश भयंकर अग्नि भी है। सुन्दर मनोरम द्वीप भी है तो हजारों योजनों तक फैली वीरानता भी है। इसमें गहरी खाइयाँ भी हैं तो ऊँचे पहाड़ भी हैं।

न मालूम कितने अन्तर द्वीपक मनुष्यों का निवास समुद्र में है तो अंडगोलक जैसे भयंकर क्रूर मानव भी समुद्र के अन्दर ही निवास करते हैं। इसमें तेल के भंडार हैं, मूंगे के पौधे हैं, रत्नों की निधियाँ हैं। इसमें हजारों सभ्यताएँ जल समाधि ले चुकी हैं। हजारों माताएँ पुत्रों को खो चुकी हैं। हजारों स्त्रियों ने अपने पतियों को त्यागा है। हजारों पुत्र अनाथ हुए हैं। लाखों मनुष्यों ने जल समाधि ली है। लाखों का जीवन तहस-नहस किया है। ऐसा है सागर, ऐसा है समन्दर, ऐसा है समुद्र, ऐसा है रत्ना।

एक ऐसा ही सागर हम सबके भीतर है। एक ऐसा ही सागर हम में भी हिलोरें ले रहा है। एक ऐसा ही सागर हम में भी ठाठें मार रहा है। हम में भी लहरें उछल रही हैं। हम में भी ज्वार भाटे आ रहे हैं। हम में भी रत्न हैं। हम में भी मूंगा है। हम में भी खारापन है। हम में भी निर्मल, स्वच्छ जल है। हम में भी खाई है। हम में भी पहाड़ है। हम में भी मगरमच्छ है। हम में भी व्हेल है। हम में भी वीरानता है। हम में भी कोलाहल है। हम में भी हजारों सभ्यताएँ समाधि लिये हुए हैं। हम भी ठाठे मारते हैं और हम भी शांत रहते हैं।

यह सागर, भावों का सागर है। यह स्वच्छता भावों की है। यह उफान भावनाओं का है। यह पहाड़ भावनाओं के हैं। यह खाई भावनाओं की है। यह मलिनता भावनाओं की है। यह मगरगच्छ भावों के हैं। ये व्हेल भावों की है। ये खारापन, ये मीठापन भावों का है। ये परिशांतता भावों की है। ये शोर भावों का है। ये वीरानी भावों की है। ये भाव हमें ऊँचाइयों तक ले जाते हैं और ये ही भाव हमें रसातल में पहुँचा देते हैं। ये भाव मूंगे के रूप में कीमती होते हैं और ये ही भाव रेती की भाँति निर्मूल्य बना देते हैं। इन भावों के कारण ही जीव नरक गति में जाते हैं और इन्हीं भावनाओं के आधार पर हम स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।

ये भावनाएँ ही हैं जो व्हेल की भाँति शांत हैं और मगरमच्छ की भाँति क्रूर हैं। ये भावना ही है जो रत्नों के सदृश संयम प्रदात्री है और ये ही भावनाएँ हैं जो हमें असंयम सदृश खारा पानी बनाए रखती हैं। इन भावनाओं को ही अध्यवसाय स्थान कहा है। इन्हीं भावनाओं का लेश्याओं पर प्रभाव पड़ता है। ये भावनाएँ ही आभामण्डल का निर्माण करती हैं। ये ही भावनाएँ टेलीपैथी का रूप लेकर हजारों किमी दूर बैठे व्यक्ति को भी प्रभावित कर देती हैं। इन्हीं भावनाओं के उर्ध्वारोहण से जीव श्रेणी आरोहण करता है और इन्हीं भावनाओं की निर्मलता से जीव क्षपक श्रेणी प्राप्त करता है।

इन्हीं भावों के प्रभाव से जीव यथाप्रवृत्तिकरण करता है, अनिवृत्तिकरण करता है, अपूर्वकरण करता है, उपशान्त अद्धा को प्राप्त करता है, सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, श्रावकत्व को उपलब्ध होता है, साधुत्व में स्थित होता है, अप्रमत्तता का सेवन करता है, श्रेणी आरोहण करता है, कर्मों

का क्षय करता है, मोहनीय कर्म को पराजित करता है, घाति कर्मों का नाश करता है और सर्व कर्मों का क्षय करके सार्वकालिक सुखद मोक्ष में स्थित हो जाता है। ये भावों का ही प्रभाव है। इसकी निर्मलता हमारा उत्थान करती है। इसकी निर्मलता हमें उर्ध्वगामी बनाती है और इसकी मलिनता हमें अधोगामी बनाती है तथा परिभ्रमण करवाती है। इसलिए भावना भवनाशिनी कहा है। इसलिए भावों को ही प्रधान कहा है। भाव चारित्र को प्रधानता दी है। भाव आवश्यक को आचरणीय बताया है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। चिन्तनशील वृत्ति का है। बिना चिन्तन के एक क्षण भी रहना उसके लिए असंभव सा है। पिछले दो दशकों में संसाधनों और सुविधाओं की जगत् में बाढ़-सी आ रही है। नित नए आविष्कार हो रहे हैं। नित नया मनोरंजन उपलब्ध हो रहा है, जो थोड़े दिन लोगों को लुभाता है और वही कुछ दिनों में तिरोभाव को प्राप्त हो जाता है। तकनीक की गाय का दोहन और उससे प्राप्त होने वाला मनोरंजन रूपी दुग्ध धारा प्रवाह निकाला जा रहा है। सदियों पूर्व भी यह प्रक्रिया इतनी ही जीवंत थी, परन्तु वे उपाय इतने शीघ्रता से नाकाम नहीं हो जाते थे। वे उपाय कभी-कभी पीढ़ियों तक अपनी पैठ समाज में बनाए रखते थे। एक पूरा युग उस उपाय से अपने को लाभान्वित करता था। दादा, परदादा, उनके दादा फिर उनके दादा भी उन सबसे खेलते चलते-फिरते मनोरंजन के तरीके थोड़े से परिवर्तनों के साथ समान ही थे। उनके उपाय भी सीमित थे। माता-पिता, गुरु-शाला के शिक्षक प्रकृति, चौपाल, नदी, विहार, नुक्कड़ नाटक, किस्सागोई, माटी के खिलौने, यही उनका संसार था।

आज यह दौर बड़ी तेजी से दौड़ रहा है। इससे हम क्षण-क्षण बदल रहे हैं। पल-पल परिवर्तन घट रहा है। एक बटन दबाने के साथ ही हम पूरे विश्व से संबद्ध हो जाते हैं। पूरा जगत् हमारे समक्ष होता है। सेकंड के अन्दर हम हजारों मील दूर रह रहे व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने में सफल हो चुके हैं। क्या हमारी ये प्रगति सराहनीय है ?

इसकी समीक्षा करनी पड़ेगी। संक्षेप में कहें तो ये कहना होगा कि इस युग में हमारी गति में तीव्रता आ चुकी है। हम बदल रहे हैं। हम परिवर्तन

ला रहे हैं। हम परिवर्तित हो रहे हैं। परन्तु सोचें कि हमारे इस तीव्रतम बदलाव का कारण क्या है ? हम क्यों पलायन कर रहे हैं ? बेतहाशा भाग रहे हैं क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों ? कभी सोचा इस ज्वलंत प्रश्न पर ? कभी मन को केन्द्रित किया ? व्यक्ति जिस अवस्था में रहता है, उस अवस्था से वह प्रसन्न नहीं रहता है, तब वह वहां से भागना चाहता है। वहां से वह पलायन वृत्ति को अपनाता है। वो जहां है वहां से हटने की मनीषा बनाता है। हमारी यह वृत्ति हमें तेजी से बदल रही है। हमारी यह चर्या हमें नये-नये आविष्कारों को करने की प्रेरणा दे रही है। परन्तु इतना होने पर भी क्या हमें अन्त:संतोष है ? क्या हम तृप्त अनुभव कर रहे हैं ? क्या हमें संतोष है ? क्या हम जीवन की परीक्षा में स्वयं को उत्तीर्ण घोषित कर सकते हैं ? क्या इस युग को वाकई में विकास का युग कह सकते हैं ? क्या हम वास्तव में प्रगति कर रहे हैं ? क्या हम वास्तव में सभ्य बन रहे हैं ? सोचना होगा इन बिन्दुओं पर। विमर्श करना होगा।

इसका जवाब ना में ही आने वाला है। क्योंकि हम जानते हैं कि हमारी प्रगति खोखली है। हम जानते हैं कि हमारा विकास पोचा है। हम जानते हैं कि हमारी तृप्ति अधूरी है। हम कहीं न कहीं चूक रहे हैं। हम कहीं न कहीं खो रहे हैं। हम कहीं न कहीं भूल रहे हैं। बड़े मजे की बात ये है कि इतना होने पर भी हम ऊपर से खुश होने का नाटक कर रहे हैं। इतना होने पर भी हम अपने को परम सुखी घोषित कर रहे हैं।

प्रश्न है कि यदि हम वास्तव में खुश हैं तो आत्महत्या की दर में वृद्धि क्यों आई है?

प्रश्न है कि तलाक की संख्या में इजाफा क्यों हुआ है ?

प्रश्न यह भी है कि परिवारों का विघटन क्यों हो रहा है ?

प्रश्न है कि विश्ववृत्त पर इतनी असहिष्णुता का वातावरण क्यों है ?

क्यों आज का मानव एक-दूसर के खून का प्यासा बना हुआ है ?

क्यों एक-दूसरे की जमीन हड़पी जा रही है ?

क्यों सह अस्तित्व की गूंज फिजां में नहीं फैल रही है।

क्यों इतनी हत्याएं हो रही हैं? क्यों इतने बलात्कार हो रहे हैं?

क्यों इतनी छीना-झपटी हो रही है?
क्यों इतनी दवाइयां खोजी जा रही हैं?
क्यों नींद के इंजेक्शन लिए जा रहे हैं?
क्यों लोग सारी-सारी रात क्लबों में भटक रहे हैं?
क्यों अश्लीलता के अंबार खड़े कर रखे हैं?
क्यों अनाचार का बोलबाला हो गया है?
क्या हम वास्तव में सभ्य हैं?
क्या हम वास्तव में शिक्षित हैं?
क्या हम वास्तव में संस्कारित हैं?
क्या हम वास्तव में बुद्धिजीवी हैं?
क्या हम वास्तव में सज्जन पुरुष हैं?

पूछें! दूसरे से नहीं, अपने आप से पूछें। एक बार नहीं, निरंतर पूछें।

इसे गुंजाने के लिए हमें भावनाओं का साहाय्य लेना होगा। इसे प्रवाहित करने के लिए हमें अनित्यता की अनुभूति करनी होगी। हमें अशरण भाव की प्रतीति करनी होगी। हमें संसार भावना का आस्वादन लेना होगा। हमें प्रमोद भावों में डुबकी लगानी होगी। हमें मैत्री भावना का प्रसार करना होगा। हमें करुणा की सरिता प्रवाहित करनी होगी और हमें माध्यस्थ वृत्ति को अपनाना होगा। तभी हम इस लपट से बच पाएंगे। शास्त्रकारों ने अपने ज्ञान में आने वाले युग की विभीषिका को जान लिया था और उसके निवारण के लिए ही उन्होंने पवित्र भावनाओं का निरूपण किया।

इस निर्झर के भीतर हम स्नात होवें। हम अपने कर्म कल्मष को मल-मल कर धो डालें। हम अपने भीतर के सारे कचरे को उस प्रवाह में बहा दें। हमारा अन्तस् निर्मल बन जाए। हमारा हृदय पवित्र हो जाए। हमारा मन दर्पण की भाँति पारदर्शी हो जाए। हमारे अन्तःस्थल में शांति की गंगा बहने लगे। हमारा मनस् भी आने वाले झंझावातों से प्रकंपित न हो। वह मेरु की भाँति अविचल रहे, निश्चल रहे। चाहे युग कैसा भी हो, उस युग की छाया उस व्यक्ति पर नहीं पड़े। वह बड़े ही आनन्द के साथ वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को चरितार्थ करे।

यह सिर्फ और सिर्फ हमारे हाथ में ही है। इसके जिम्मेदार सिर्फ और सिर्फ हम ही हैं, क्योंकि हमारी निर्मल दृष्टि निर्मलता को देखने से बनेगी। हमारी स्वच्छ वृत्ति स्वच्छता पर नजर रखने से बनेगी। अपने शुभ और अशुभ के एक मात्र जिम्मेदार हम ही हैं। ऊँचा उड़ने से भी अच्छा है ऊँचा देखना।

एक जंगल में एक गिद्ध रहता था। वह ऊँचे आकाश में अपने विशाल पक्षों से उड़ता रहता था। ऊँचा..... ऊँचा और ऊँचा। वह निरन्तर ऊँचाई लिए हुए था। बहुत ऊँचाई पर पहुँचकर भी वह अपनी नजरों को नीचे की ओर ही बनाए रखता था। उसकी उड़ान से मुर्गा ईर्ष्या करता था। वह तो उड़ नहीं सकता था, पर उड़ते हुए गिद्ध को देखकर उसका मन भी उड़ने का करता था। नीले आकाश की सैर का विचार करता था। वह भी तारों से बतियाना चाहता था। वह भी हवा में झूलना और चांद को चूमना चाहता था। वह भी स्वर्ग की यात्रा करना चाहता था। वह सपने देखा करता था कि मैं भी उड़ूं। मैं भी छलांग लगाऊँ। मैं भी आकाश को मापूं। मैं भी उन्मुक्त गगन में स्वेच्छा से विहरण करूं, उसके मन में उछाल आता था। वह भी तड़पता था उस गिद्ध को देखकर। वह मायूस हो जाया करता था।

दिन बीतते जा रहे थे। उम्र दौड़ी चली जा रही थी। एक बार उस जंगल में एक महात्मा पधारे। उन्होंने उस मुर्गे को देखा जो कि एक पेड़ की छांह में मातम मना रहा था। आसूं बहा रहा था। ऐसा देखकर महात्मा उस मुर्गे से पूछते हैं कि तू क्यों उदास है? अपनी उदासी का सबब मुझे बता, मैं कुछ तेरी मदद करूंगा। ऐसा सुनकर उस मुर्गे ने अपने मन के विचार महात्मा को बताए। उसकी बात को सुनकर महात्मा खिलखिलाकर हंस पड़े और उसे समझाने लगे कि बड़ा वह नहीं है जो ऊँची उड़ान भरता है, ऊँचाइयाँ छूता है और नजर को नीचे की ओर टिकाए रहता है। बड़ा वह है जो नीचे खड़ा होकर भी ऊपर की ओर नजर रखे। ऊपर की ओर दृष्टि रखे। वह उर्ध्वगामी होता है। उर्ध्वगामी, उर्ध्वदृष्टि वाला बनता है। मतलब यह हुआ कि जो ऊँची दृष्टि रखता है वह ऊँचा उठता चला जाता है। वह ऊपर की ओर बढ़ता है। वह उर्ध्व गामी बनता है।

यही बात हमें भी समझना है। मानव जाति इसी कारण दु:खी हो रही है कि वह अपने से ऊपर उठने वाले को देखकर दु:खी एवं संतप्त होती रहती है। इसी समस्या को देखकर सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवंतों ने हमें भावनाओं का संबल दिया है, जिसकी सहायता से हम ऊपर उठ सकें। जिसकी सहायता से हम मानस को निर्मल रख सकें, जिसकी सहायता से समाधि वृद्धिवती बनती रहे। जिसकी सहायता से कर्मों के क्षय में सहयोग प्राप्त हो। भावनाओं की तुलना शायद समन्दर से भी नहीं करनी थी क्योंकि स्वयंभूरमण समन्दर भी भावनाओं के समक्ष बौना साबित होता है। स्वयंभूरमण समुद्र का तो अंत है पर भावों का अन्त नहीं है। भाव असीम हैं, निस्सीम हैं। भावों का उछाल अद्‌भुत है।

भावों की उद्दाम तरंगें पूछना हो तो नरक में जाते-जाते मोक्ष में जाने वाले प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को पूछें। जीरण और पूरण श्रेष्ठी को पूछें कि दान नहीं देकर भी वह एकाभवतारी बन गया। हम पूछे संगम से कि भाव पूर्ण दिया गया दान कितना प्रभावशाली है। शंख और यशोमति से पूछना कि भावपूर्ण धोवन पानी बहराने का क्या लाभ है ? मुनि से पूछें कि उन्होंने भावपूर्ण मुनियों की सेवा भक्ति की, जिससे चक्रवर्ती से अधिक बलशाली बने। पूछें नन्दमुनि से कि भाव क्या है ? धन्ना सार्थवाह से पूछें, नयसार से पूछें, हिरण से पूछें कि भावना का प्रयास क्या है ? तंदुल मच्छ से पूछें कि भावों से वह कहां पहुँच जाता है? भावनाएँ आकाश के समान अनन्त हैं और सागर के समान गहन हैं। इनके भीतर उतरने का प्रयत्न करें, इनमें डूबने की कोशिश करें, इसमें तैरने की कोशिश करें, इसमें स्नान करने का प्रयत्न करें।

1. **अनित्य भावना-** अनित्य भावना भाते हुए अपने भीतर से मोह की ग्रन्थि को हटाने का प्रयत्न करें। जब मन पदार्थों के अनित्यत्व से भली-भाँति वाकिफ हो जाएगा तो मोह से निर्मोह की दिशा प्रशस्त होगी।

2. **अशरण भावना-** अशरण भावना को भाते हुए जीव को अपने भीतर के अहंकार पर जय प्राप्त हो जाए। जब तू भी अशरण वाला है तो तू दूसरों का शरण दाता बनने का दम्भ कैसे भरता है ? जब तू खुद ही अनाथ है तो जगन्नाथ बनने का भ्रम तू अपने भीतर से निकाल दे।

3. **संसार भावना-** संसार भावना से उसके वैविध्य को जानें। विचित्रताओं को जानें, वैचित्रत्य को जानें। मन के अंदर संसार की असारता को समझें और उस असार संसार में से कुछ सार निकालने का प्रयत्न करें।

4. **एकत्व भावना-** एकत्व भावना जीव को अकेलेपन का बोध कराती है। एकला चलो रे की अनुगूंज अपने भीतर सदा बनाए रखें। कैसे भी दिन आएं, कैसी भी घटना घटे। अपने घर को घर बनाएं और मन को उदास, भावुक व मायूस न करें। अपने आत्मविश्वास को बढ़ाएं, जिसकी कमी इस युग में अधिकतम दृष्टिगोचर हो रही है।

5. **अन्यत्व भावना-** मैं अलग हूँ। कैसी भी घटना हो उससे अपने को अन्य मानना, उसको अलग देखने का प्रयास करना, जड़ और चेतन में अन्यत्व की दृष्टि परम समाधि प्रदात्री है।

6. **अशुचि भावना-** जो पवित्र है उसमें अरमण और जो अपवित्र है उसमें परम रमण, यह भारी आश्चर्य है। परम खालिस निर्मल विशुद्ध चेतना का त्याग करके अशुचिमय शरीर में रमण करना अज्ञानी और मूढ़ पुरुषों का कार्य है। अशुचिता से शुचिता की प्रेरणा अशुचि भावना देती है।

7. **आस्रव भावना-** संसार में भटकाने वाली है। इस भावना वाला जीव राग-द्वेष के वशीभूत होकर कई तरह के पाप कार्यों में प्रवृत्त होता है और चार गति 84 लाख जीव योनि में भटकता रहता है। नवीन-नवीन कर्मों को बांधता रहता है। इस भावना वाला चार गति से छूटने का मार्ग खोजता रहता है एवं पापों से बचता है।

8. **संवर भावना-** आवागमन का हेतु है, दु:ख का कारण है, अशांति का उत्सर्जक है। आस्रव का बोध परमज्ञानी तीर्थंकर भगवंतों ने ही दिया है। उसे जानना और साथ ही साथ उनका निरोध करना, उन पर रोक लगा देना, अपने आप को फूल प्रूफ बना लेना, ऐसा अभेद बना लेना जहां किसी का भी प्रवेश अशक्य ही नहीं नामुमकिन हो। यह संवर भावना है।

9. **निर्जरा भावना-** कर्मों को जर्जरित कर देना, उनकी शक्ति को क्षीण कर देना, उनके फल देने की क्षमता को नष्ट कर देना और जो स्नेह भाव कर्मों को आत्मा से बांधे रखता है उसका नाश करके उन्हें आत्मा से विलग कर देना निर्जरा भावना है।

10. **लोक स्वरूप भावना-** लोक का स्वरूप तत्व परित्राण के लिए आवश्यक है। जिससे जीव परिभ्रमण के स्थलों का जाने, उनमें प्रदत्त यातनाओं को समझे और इस भयावह संसार से मुक्त होने का पुरुषार्थ करे एवं निर्वेद को प्राप्त करे।

11. **बोधि दुर्लभ भावना-** आत्मा में अकूत सम्पदा है, अखूट निधि है, जिससे हम अनजान हैं। आश्चर्य की बात है कि अपनी ही निधि से हम बेखबर हैं। हम उससे अज्ञात हैं। बोधि दुर्लभ भाव उसका लाभ प्रदान करती है। आत्म बोध की गहरी प्रतीति प्रदान करती है। भव संसार के दुखद दावानल से निज आत्मा को बचा कर परम शक्तिशाली बना देती है। परम वैभव सम्पन्न बना देती है।

12. **धर्म भावना-** धर्म बिना सब सूना है। धर्म के बिना मनुष्य पशु है। उसका कोई महत्व नहीं है। जगत् में अनेक कला है, प्रतिभाएं हैं, विधियां हैं परन्तु ये सब धर्म से अधिक नहीं हैं। अपने स्वभाव में स्थित हो जाना एवं विभाव से मुक्त हो जाना धर्म भावना है।

हीरा हो और उसकी जानकारी न हो तो उसका होना या न होना बराबर है। सोना हो और कसौटी न हो तो होना न होना बराबर है। खजाना भरा हो किंतु वहां तक पहुंचने का मार्ग ही न मालूम हो तो वह कंगाल ही है।

13. **मैत्री भावना-** सोचो कि सृष्टि का प्रत्येक प्राणी मेरा मित्र है। सोचो कि सभी से मेरे मैत्री भाव हैं। प्राणि मात्र के प्रति मेरी आत्मीयता है। सर्वाधिक प्रिय शब्द कोई है तो वह है मैत्री। इसी की आराधना सभी तीर्थंकरों ने की, सभी केवली भगवान ने की और सभी मोक्षगामियों ने की। यदि जगत् में मैत्री प्रतिष्ठित हो जाये तो कितना आनंद होगा।

14. **प्रमोद भावना-** सभी व्यक्ति के प्रति प्रमोद, सभी जीवों के प्रति आह्लाद, सभी के प्रति अहोभाव, सभी के प्रति उत्तम भावना हो। जब भी कोई हमें मिले, हम उससे परम प्रमोद के साथ मिलते हैं, पूरी जिंदादिली के साथ मिलते हैं तो सोचो उसका कितना प्रभाव दोनों पर पड़ेगा। प्रमुदित भाव परम सुखदायक है।

15. **कारुण्य भावना-** सब पर बहे करुणा। सब पर प्रवाहित हो करुणा। सब पर बिखरे करुणा। सब प्राणियों को सुकून प्रदान करें। हम चिंतन करें कि सारा जगत आर्त एवं भयान्वित भावों से आपके सम्मुख उपस्थित है। वे त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। वे दुखी हैं। पर करुणा दृष्टि पड़ते ही वह आनंद मग्न हो जाते हैं।

16. **माध्यस्थ भावना-** सभी तनावों की चिकित्सा, सभी दुखों का समाधान, सभी जख्मों का मरहम मध्य में आ जाना है। न राग में, न द्वेष में प्रत्युत मध्य में स्थित हो जाना है। माध्यस्थ व्यक्ति विपुल समाधि को प्राप्त करता है। हम भी मध्य में आएं, माध्यस्थ बनें।

हमें जगत् की विभीषिका से संरक्षण प्रदान करने वाली ये उत्तम भावनाएं प्राप्त हुयी हैं। हम अपने को उदार बनाएं, मृदु बनाएं और इन श्रेष्ठ भावनाओं का जल उसमें पहुँचने दें, जिससे कि हमारे भीतर भी आनन्द के फूल खिल सकें। जिससे हमारे अन्तर में भी समाधि की बंशी बज सके। जिससे हम भी परम समाधि के पथ को प्रशस्त बनाएं।

जैसे खेत में फसल लेने से पहले भूमि को साफ करना होता है, सरल बनाना होता है, फिर थोड़े से पुरुषार्थ के परिणाम से फसल लहलहा उठती है। थोड़ी-सी मेहनत रंग ले आती है। वैसे ही अनन्त सुख की फसल की उपलब्धि करने के लिए हम भावनाओं के हल अपनी हृदय भूमि पर चलाएं, कषायों के पत्थर फेंक दें, वासनाओं के कीड़ों को नष्ट करके अन्त:स्थल को अनन्त सुख की कृषि योग्य बना लेवें। इसका उपाय है कि हम भावनाओं में बहें, भावनाओं में रमें और भावुक हृदय बनकर भव्यता को सार्थक करते हुए सिद्धत्व को प्राप्त करें।

■■■

हाँ ! सोलह भावना पूरी हो चुकी है। अब बची आपकी भावना।
इस पुस्तक को पढ़कर आपके मन में जो भावना आई
उससे हमें अवगत करायें।

हमारा पता है -

भावय रे...

द्वारा **साधुमार्गी पब्लिकेशन**

समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग

नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर - 334401 (राजस्थान)